श्रृंखला

अखिलेश

हिन्दी ADDA

श्रृंखला

बाबा धोती, कुर्ता और बंद गले का चित्तीदार कोट पहने थे। वह सुनिधि के दफ्तर के भव्य सोफा में सहमे हुए धँसे थे। सुनिधि उनके नजदीक आई। उसे वह कुछ पहचाने हुए लगे, 'किससे मिलना चाहते हैं आप?'

'सुनिधि से।'

'मैं हूँ बताइए।'

वह खड़े हो गए। चौकन्नेपन के साथ चारों ओर देख कर फुसफुसाए, 'मैं रतन का बाबा हूँ।'

'आप!', वह अर्से बाद इतना हैरान हो रही थी। लगभग चिल्ला पड़ी, 'कहाँ है रतन?'

'आहिस्ता बोलो बेटी।' उन्होंने लगभग सुनिधि के कान में कहा, 'रतन ने तुमको बुलाया है।'

इमारत से बाहर निकल कर बाबा बोले, 'वह बड़ी मुसीबत में है।'

सुनिधि चुप रही। वह अपनी कार पार्किंग से बाहर निकाल रही थी। जब कार आराम से सड़क पर चलने लगी तो बाबा ने बहुत उदासी से कहा, 'उसकी किस्मत ही मुखालिफ है। आँखें जनम से खराब, थोड़ा बड़ा हुआ - एक्सीडेंट में माँ बाप, भाई, बहन मर गए। और अब यह नई मुसीबत। लेकिन बिटिया वह बहुत भला लड़का है। पढ़ने में भी बहुत तेज था, हमेशा पढ़ाई में अव्वल आता था...।'

'पता है बाबा, मैं उसके साथ पढ़ी हूँ। बचपन में, और बड़ी हो कर भी।'

'बचपन में?' बाबा चकित हुए।

'हाँ मैं आपके पड़ोस में रहती थी, महेश चंद्र अग्रवाल की बेटी टीना।'

'अरे तुम टीना हो।' बाबा के होंठ जरा सा मुस्करा कर फड़के, 'मैं तुझे पहचान नहीं पाया।'

'बड़ी हो गई हूँ। उम्र फर्क ला देती है, बाबा। वैसे मैं भी आपको कहाँ पहचान सकी, जबकि आप अधिक नहीं बदले हैं।'

'झूठ मत बोलो टीना बिटिया, मैं जानता हूँ, मैं काफी बूढ़ा हो गया हूँ। मुझे अब तक भगवान के घर चले जाना चाहिए था लेकिन वह बुलाता नहीं मुझे। पहले सोचता था कि ऊपरवाला मेरा टिकट इसलिए नहीं भेज रहा है कि मैं रतन का ब्याह देखूँ। उसकी ब्याहता को मुँहदिखाई दूँ और उसके बच्चे खिला सकूँ लेकिन अब लग रहा है मैं काफी बुरे दिन देखने के लिए जिंदा हूँ।'

आँख की बीमारी पैदाइशी थी।

सुनिधि और वह बचपन में प्रतापगढ़ के एक ही मुहल्ले में पड़ोसी थे। वह अपने बाबा के साथ रहता था। सारे बच्चे उसे कौतुक, दया, डर और प्यार से देखा करते थे। क्योंकि सभी को मालूम था कि वह एक ऐसा बच्चा है जिसके माँ, बाप, भाई, बहन सड़क दुर्घटना में मारे जा चुके थे। आँखों की बीमारी ने उसे बचाया था, वर्ना वह भी मारा जाता। उस रोज प्रतापगढ़ में मद्रास के प्रसिद्ध शंकर नेत्र चिकित्सालय के कोई डॉक्टर आए थे इसलिए वह बाबा के पास रह गया था। मद्रास के डॉक्टर ने जाँच पड़ताल के बाद कहा था : 'इसकी आँखें कभी ठीक नहीं होंगी। चश्मा लगा कर भी यह उतना ही देखेगा जितना बगैर चश्मा के। हाँ इलाज से यह फायदा होगा कि इतनी रोशनी आगे भी बनी रहेगी और यह अंधा होने से बच जाएगा।' लौटते वक्त बाबा उसे अपनी छाती से चिपकाए रहे। रास्ते में उन्होंने उसके लिए रसगुल्ले खरीदे थे।

वह रसगुल्ले खा रहा था तभी घर के लोगों की मौत की खबर आई थी। बाबा ने उसके हाथ से रसगुल्लों का कुल्हड़ छीन कर फेंक दिया था। बाबा ने पहली और आखिरी बार उसके हाथ से कुछ छीना था। इसके बाद हमेशा उन्होंने उसे कुछ न कुछ दिया ही था। वह उसके लिए खिलौने खरीदने में समर्थ नहीं थे, तो खुद अपने हाथ से खिलौने बना कर देते थे। उनकी हस्तकला से निर्मित मिट्टी और दफ्ती की अनेक मोटरों, जानवरों, वस्तुओं ने बचपन में रतन कुमार का मन लगाया था। बाबा उसे खाना बना कर खिलाते थे और जायका बदलने के लिए मौसमी फल तोड़ कर, बीन कर लाते थे। वह पोते के स्वाद के लिए प्रायः आम, जामुन, चिलबिल, अमरूद और करौंदे के वृक्षों तले भटकते थे। उन्होंने पोते के लिए फटे कपड़ों की सिलाई करना और उन पर पैबंद लगाना सीखा। इतना ही नहीं उन्होंने अपने हाथों से लकड़ी गढ़ कर रतन कुमार को बल्ला, हाकी और तोते दिए थे।

लेकिन इस बच्चे को हर तरह से खुश करने की कोशिश के बावजूद उसे लगातार यह सबक भी सिखाते रहे कि वह खूब मन लगा कर पढ़े। पढ़ाई ही उसकी दुश्वारियों का तारणहार बनेगी, यह बात बाबा ने उसके दिमाग में शुरुवाती दौर में बैठा दी थी। नतीजा यह था कि किताबें उसे प्रिय लगने लगी थीं। छपे हुए शब्द उसको ज्ञान और मनोरंजन दोनों देते थे।

उसे किताबें चेहरे के काफी नजदीक रख कर पढ़नी पढ़ती थीं, हालाँकि पढ़ने में उसको तकलीफ होती थी। शायद इस तकलीफ को कम करने के लिए उसकी याद्दाश्त विलक्षण हो गई थी या हो सकता है कुदरत ने कोई चमत्कार किया था - वह जो भी पढ़ता सुनता तुरंत याद हो जाता था। इसलिए इम्तिहानों में वह हमेशा टॉप करता था। लोग उसकी स्मरणशक्ति से इतना हतप्रभ और भयभीत रहते कि प्रचलित हो गया

था, उसको एक साधू का वरदान प्राप्त है, कोई किताब छूते ही उसके माथे में छप जाती है।

फिर भी वह बुझा बुझा रहता था, जैसे कोई बात, कोई बुरा सपना सताता रहता हो। दरअसल उसे वहम था कि अपने परिवार वालों की तरह उसकी और बाबा की मौत सड़क हादसें में होगी। हालत यह थी कि बाबा घर से निकल कर कहीं जाते तो वह तब तक थर थर काँपता था जब तक वह लौट कर वापस नहीं आ जाते थे। खुद भी सड़क पार करते उसके टखने काँपते थे। पर इस अंधविश्वास ने दूसरी तरफ उसे ऐसा निडर बना डाला था कि वह बड़ी से बड़ी विपत्ति में कूद पड़ता था। यूनिवर्सिटी में पढ़ाई के दिनों में वह एक कुख्यात गुंडे से भिड़ गया। गुंडे ने उसके मस्तक पर तमंचा रखा लेकिन खौफजदा होने के बजाय उसने गुंडे को कई झापड़ मारा। इसकी व्याख्या यह हुई कि आँखें कमजोर होने की वजह से उसे तमंचा दिखाई नहीं पड़ा था। प्रतापगढ़ से उसके साथ आई सुनिधि ने उससे पूछा था, 'तुम्हें डर नहीं लगा।' उसका जवाब था, 'क्यों डरता! मुझे पता है, मेरी मौत तमंचे नहीं एक्सीडेंट से होगी।'

अजीब बात थी उसे सड़क दुर्घटना की हमेशा चिंता रहती थी लेकिन अपनी दृष्टिबाधा को ले कर वह कभी परेशान नहीं दिखता था। बाद में ऐसा हुआ कि वह वास्तविकता से भी ज्यादा दृष्टिमंदता को कुछ बढ़ा चढ़ा कर प्रचारित करने लगा। नजदीक से ही सही, नन्हें अक्षरों को पढ़ लेने वाला वह कभी कभार सामने वाले को पहिचानने से इनकार कर देता अथवा गलत नाम से पुकारता।

यह हरकत लड़कियों को विशेष रूप से आहत करती थी। वह छरहरी रूपयौवना को किसी अध्यापिका के रूप में संबोधित करता तो वह खफा हो जाती थी। दिल्ली के करोलबाग की एक प्रसिद्ध दुकान से मँगाए गए दुपट्टे पहने लड़की से उसने कहा, 'लड़कियों में यह अगौंछा पहनने का फैशन अभी शुरू हुआ है?' लेकिन वह इतना मेधावी था, नाकनक्श से आकर्षक था और वक्तृता उसकी ऐसी पुरजोर थी कि लड़कियाँ पलट कर उसे जली कटी नहीं सुनाती थीं। उलटे इस वजह से उसकी ओर अधिक खिंचने लगती थीं। वे अकसर अपने को दिखा पाने के लिए उसके काफी पास खड़ी हो जातीं, तब वह यह कह कर आहत कर देता था, 'इतनी दूर खड़ी होने के कारण मुझको ठीक से दिखाई नहीं दे रही हो।' वे उदास हो जाती थीं। और तब शर्मशार हो जातीं जब उनकी सुडौल उँगलियों की नेलपालिश देख कर वह कहता, 'पेन लीक कर रही थी क्या जो उँगलियों में इतनी इंक पुती है।' एक लड़की की भाभी उसके लिए फ्रांस से लिपस्टिक लाई थी जिसकी लाली उसके होठों पर देख कर उसकी टिप्पणी थी, 'वैदेही, पान मत खाया करो, दाँत खराब हो जाएँगे।' ये सब देख कर लड़कों ने उसके

विषय में घोषणा की, 'रतन कुमार एक नंबर का पहुँचा हुआ सिटियाबाज है और लड़की पटाने की उसकी ये स्टाइल है।' लेकिन जब इन्हीं में एक की शर्ट में पेन देख कर उसने कहा, 'तुम कंघी ऊपर की जेब में क्यों रखते हो, तुम्हारी पतलून में हिप पाकेट नहीं है?' तो लड़कों को भरोसा होने लगा कि रतन कुमार वाकई में कम देखता है। इस ख्याल में इजाफा एक दिन कैंटीन में हुआ। उसने समोसा चटनी में डुबोने के लिए हाथ नीचे किया तो वह प्लेट की जगह मेज पर जा गिरा था।

उस वक्त सुनिधि भी कैंटीन में बैठी हुई चाय पी रही थी। रतन कुमार की विफलता देख कर उसे दया आई और फिक्र हुई कि रतन की आँखें अब ज्यादा खराब हो गई हैं। उसने सोचा, इस बेचारे की नैया कैसे पार लगेगी। इसकी हालत यह है और इस संसार में इसका एक बाबा के सिवा कोई है भी नहीं जो अब बूढ़े हो गए हैं। उनके बाद कौन इसका ख्याल रखेगा। उसने खुद से कहा, 'मैं! मैं उसके बचपन की सखी, मैं इसका ख्याल रखूँगी।' उसे रतन पर बेपनाह अनुराग उमड़ा था और उसी पल से वह यूनिवर्सिटी में ज्यादा वक्त उसके संग रहने लगी थी। साथ रहते हुए, वह अपने भीतर खुशी, भरापन और सुकून महसूस करती थी। बस एक कमी उसको सालती थी कि क्या रतन कुमार उसे ठीक से पहिचानता भी है। घुटन उसमें इस रूप में प्रकट होती, 'क्या सैकड़ों के बीच वह मुझे पहचान सकेगा और कहेगा कि यह मैं हूँ।' संभावित जवाब उसे निराशा में डाल देता, 'मेरी त्वचा का रंग, मेरी गढ़न, मेरे शरीर की हलचल को वह कभी नहीं देख सकेगा।'

अजीब बात थी, वह जितना ही अधिक इस कमी के बारे में विचार करती उतना ही अधिक रतन के प्रति लगाव महसूस करने लगती। जब उसे याद आता कि रतन की इस बीमारी का कोई इलाज नहीं है तब शायद उसका रतन के प्रति लगाव अपने उत्कर्ष पर होता लेकिन वह यह सोच कर परेशान हो जाती कि कहीं इसकी आँखें पहले से भी ज्यादा खराब न हो गई हों। यदि वह एक दिन पूरी तरह अंधा हो गया तब? और आश्चर्यजनक रूप से ऐसी मनःस्थिति में उसके भीतर रतन कुमार के लिए प्यार कतई बढ़ता और उमड़ता नहीं था। वह अथाह खौफ से थर्रा उठती थी और रतन एवं स्वयं से छिटक कर दूर जा गिरती थी। फिर वह धीरे धीरे यह ख्याल करके अपने को सामान्य बनाती कि ऐसा नहीं होगा। उसकी नेत्र ज्योति बेहतर नहीं हुई होगी तो बदतर भी नहीं होगी। एक दिन लायब्रेरी के पास उसने पूछा, 'रतन पहले की बनिस्बत अब कैसा दिखता है?'

'बेहतर।' रतन ने बताया।

'क्या किसी नए डॉक्टर को दिखाया था।' वह उत्साहित हुई थी।

'डॉक्टर ने कहा था : 'तुम्हारी ज्योति तुम्हारे पास नहीं है इसलिए कम देखते हो।' अब मेरी ज्योति मेरे पास है।' उसने सुनिधि की हथेली को छुआ, 'अब तुम मेरे पास हो, मुझे सब दिखता है।'

'मतलब?' सुनिधि आधी भौचक्की आधी परम खुश थी।

'मतलब यह कि तुम्हारे टॉप की नीली बटनें वाकई खूबसूरत हैं।'

वह चौंक पड़ी थी।

और जब एक रेस्तरां के हल्के उजाले में उसने कहा, 'तुमने अपनी भौहें ठीक कराई हैं, अच्छी लग रही हैं।' तब वह और ज्यादा चौंक पड़ी थी। मगर अड़तालीस घंटे बाद वह एक सिनेमाहाल की सीढ़ियाँ ठीक से न देख सकने के कारण गिर पड़ा था। उसे टिटनेस का इंजेक्शन लगवा कर और मरहमपट्टी कराने के बाद सुनिधि ने पूछा, 'तुम्हें सीढ़ियाँ नहीं दिखतीं पर मेरी भौहें दिखती हैं, माजरा क्या है?'

'माजरा यह है कि मैं तुम्हारी भौंहें देखने में मसरूफ था, इसलिए सीढ़ियाँ न देख सका।' ऐसा वाक्य कह चुकने के बाद कायदन उसे मुस्कराना चाहिए था लेकिन वह बहुत शांत हो गया था। उसमें बहुत अवसाद, सचाई, उदात्तता और खामोशी उतर आई थी। ऐसा लग रहा था, उसकी बीमार आँखें छलक आएँगी, 'वाकई मुझे ठीक से दिखाई नहीं देता है। बात बस इतनी है कि मैं दो सीढ़ियों के बीच की जगह को भाँप नहीं पाया और गिर पड़ा।' वह रुका, जैसे कुछ खास बताने या छुपाने की तैयारी कर रहा हो। उसने एक लंबी साँस ली, गोया कोई दास्तान सुनाने जा रहा हो। वह बोला, 'तुम मेरी बात का यकीन नहीं करोगी, लेकिन सच यह है कि मेरे साथ ऐसा होता है... ऐसा होता है मुझमें कि मैं कभी कभी एकदम बहुत साफ देखने लगता हूँ। जैसे मेरी आँखों की बिगड़ी हुई रोशनी इकट्ठा हो कर वापस आ गई हो और तब मैं बहुत छोटी छोटी बारीक चीजें भी देखने लगता हूँ। लेकिन ऐसा बहुत कम होता है। तभी जब मैं गुस्सा, प्यार, नफरत या किसी दूसरे जज्बात से लबालब भरा होता हूँ। मेरी बात का भरोसा करो, तब मैं सूई में तागा तक डाल सकता हूँ। खोई हुई राई का दाना ढूँढ़ सकता हूँ। और इधर ऐसा हो रहा है क्योंकि तुम्हें देख कर मुझमें भावनाओं का समंदर उमड़ा हैं। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ सुनिधि।'

सुनिधि हँसी, उसे उसकी बात पर रत्ती भर एतबार नहीं हुआ। उसने यही नतीजा निकाला था कि इसने बड़ी होशियारी से इस मौके को अपने प्रेम की अभिव्यक्ति के अवसर के रूप में इस्तेमाल कर लिया। यह ढंग उसे पसंद आया था इसलिए वह हँसी थी मोहक तरीके से। अगले ही क्षण वह चुप हो गई थी जैसे एक युग के लिए मौन इख्तियार कर लिया हो। और दुबारा हँस पड़ी थी जैसे एक युग के बाद हँसी हो।

लेकिन उसने झूठ नहीं कहा था, यह यूनिवर्सिटी छोड़ने के दो बरस बाद साबित हुआ था : दीपावली की अमावस्या वाली रात थी। सुनिधि के बेडरूम की लाइटें बुझी हुई थीं। सिर्फ एक मेज पर सात मिट्टी के दीप जल रहे थे। हर दीए की तेल में डूबी बाती का एक सिरा टिमटिमा रहा था। इस तरह सात टिमटिम रोशनियाँ कमरे में काँप रही थीं। कमरे में मद्धिम - झीनी-सी रोशनी थी। जैसे उनींदेपन में प्रकाश धीमे-धीमे साँस ले रहा हो। उन दीयों की रोशनी में सुनिधि के वक्ष भी जल रहे थे। सुनिधि की नग्न लंबी पीठ पर उसने धीमे से दाईं हथेली रखी, 'पीठ भी जल रही है।'

'क्या बहुत गर्म?' सुनिधि ने पूछा

'हाँ।'

'क्या वाकई ?'

'हाँ। और तुम्हारी देह से प्रकाश भी झर रहा है।'

'और क्या?'

'और जैसे आतिशबाजी हो रही हो।' उसने कहा था और सुनिधि के दोनों वक्षों के मध्य चूमा था, 'यहाँ तिल है तुम्हारे।'

उसने तिल देखा था सुनिधि की गरदन के बाईं तरफ भी जहाँ केशों का इलाका खत्म होता था। उसने तिल देखा था नितंब पर और स्कंध पर और नाभि के थोड़ा ऊपर।

सुनिधि खौफ, हर्ष, अचंभा और उन्माद से सिहर उठी थी कि सात दीयों के नीम उजाले में वह उसके सूक्ष्मतम कायिक चिह्नों की शिनाख्त कर पा रहा है।

उस रात सात दीपक रात भर जलते रहे थे और वे दोनों रात भर जगते रहे थे। इसे यूँ भी कहा जा सकता है : सात दिए रात भर जगते रहे दो लोग रात भर जलते रहे।

वे उन दोनों के सबसे हँसमुख दिन थे। सुनिधि बड़ी पगार पर एक कंपनी में काम कर रही थी। वह भी विश्वविद्यालय में लेक्चरर हो गया था। कहते हैं कि इंटरव्यू के लिए बनी विशेषज्ञों की चयन समिति का एक सदस्य घनघोर पढ़ाकू था, जिसके बारे में चर्चा थी कि साक्षात्कार के समय प्रत्याशी के जाने और दूसरे के आने के अंतराल में वह किताब पढ़ने लगता था। यहाँ तक कि जब उसे प्रश्न नहीं पूछना रहता था जो वह पढ़ने लगता था। इस अध्ययनशील बौद्धिक की भृकुटि रतन कुमार को देख कर टेढ़ी हो गई थी। वह टेढ़ी भृकुटि के साथ ही बोला था, 'एक अध्यापक को जीवन भर पढ़ना होता है, आप इन आँखों के साथ कैसे पढ़ेंगे?' यह कह कर उसने पढ़ने के लिए अपनी किताब हाथ में ले ली थी। वह पृष्ठ खोलने जा रहा था कि उसे रतन कुमार की आवाज सुनाई पड़ी, 'पढ़ने के लिए अपनी आँखों और किताब को कष्ट क्यों दे रहे हैं, मैं जबानी सुना देता हूँ।' रतन कुमार ने आँखें मूद लीं और उस किताब को अक्षरशः बोलने लगा था।

अर्द्धविराम, पूर्णविराम के साथ उसने पुस्तक का एक अध्याय सुना दिया था। इस किस्से में अतिरंजना का पर्याप्त हिस्सा होना निश्चित लगता है लेकिन यह तय है कि कमोबेश कुछ करिश्मा हुआ था, क्योंकि रतन कुमार को सिफारिश और जातिगत समीकरण के बगैर चुन लिया गया था।

नौकरी पा जाने के बाद वह बाबा को अपने पास रखने के लिए लाने प्रतापगढ़ गया था पर अकेला ही लौटा था बाबा कहीं जाने के लिए तैयार नहीं थे। उनकी दलील थी, 'इंसान जहाँ जिंदा रहे उसे वहीं मौत चुनना चाहिए। मैं यहीं प्रतापगढ़ में मरूँगा।'

'इनसान केवल जिंदगी चुनता है बाबा। मौत अपनी जगह और तरीका खुद तय करती है।' उसने बाबा से जिरह की।

'इनसान के हाथ में कुछ नहीं है न मौत के हाथ में। सब ऊपर वाले की मर्जी है। बस ये समझ कि उसकी मर्जी है कि तेरा बाबा प्रतापगढ़ में रहे।' बाबा ने एक तरह से इस प्रसंग को यहीं खत्म कर दिया था।

वह खाली हाथ वापस आ कर अपने अध्यापक जीवन में विधिवत दाखिल हो गया था। उसकी बाकी मुरादें पूरी हो रही थीं। वह अपने बचपन को याद करता था जब उसकी आँखों को देखते ही बाबा की आँखों में अँधेरा छा जाता था जो धीरे धीरे चेहरे पर इतना उतर आता कि चेहरा स्याह पड़ जाता था। उन दिनों लड़के उसकी आँखों का मजाक बनाते और बड़े उसके बंजर भविष्य को ले कर कोहराम मचाते थे। उसे खुद यही लगता था कि उसका जीवन काँटों की सेज है लेकिन अब वह काफ़ी खुशनसीब

नौजवान था उसके पास पसंदीदा नौकरी थी और सुनिधि के रूप में अद्‌वितीय हमजोली।

वह हर शाम सुनिधि के फ्लैट की तरफ चला जाता। वहाँ जाने का उसमें इतना उतावलापन रहता कि वह सुनिधि को फोन करके उसके होने न होने की दरियाफ्त तक नहीं करता था। इसलिए कई बार वहाँ जाने पर सुनिधि के फ्लैट में ताला पड़ा मिलता। तब वह उसके आने तक वहीं इर्द गिर्द सैर करने लगता था। सुनिधि ने उसे इस स्थिति में कई बार देखा था। एक बार उसने कहा, 'तुम आने के पहले फोन कर लिया करो तो इस तरह इंतजार नहीं करना पड़ेगा।'

'मुझे तुम्हारा मिलन पसंद है और तुम्हारा इंतजा़र भी। मैं तुम्हारी गैरहाजिरी में भी तुमसे मुलाकात करता हूँ और एक संत की तरह बेखुदी में चला जाता हूँ। तुम्हारे फ्लैट के बाहर टहलते हुए मैं कई बार इसी तरह संत बना हूँ।'

'तुम्हारा संत बनना बढ़िया बात है।' सुनिधि ने अपने फ्लैट के लॉक की डुप्लीकेट चाबी उसको दी, 'इसे अपने पास रखो। आइंदा से मेरे घर के बाहर नहीं भीतर आराम से संत बनाना।'

उसने चाबी पाकेट में रखते हुए कहा था, 'घर के अंदर मैं संत नहीं शैतान बनना चाहूँगा।' उसकी बात पर सुनिधि ने बनावटी गुस्सा दिखाया जिस पर वह बनावटी ढंग से डर गया था।

पर उस फ्लैट के लॉक को खोलना भी मुश्किल काम था। उसकी कमजोर आँखें लॉक के छिद्र को ठीक से देख नहीं पाती थीं। वह अंदाजा से चाबी यहाँ वहाँ कहीं रखता और आखिरकार एक बार दरवाजा खुल जाता था।

वह जाड़े की शाम थी। तूफानी ठंड पड़ रही थी। हिमाचल में बर्फबारी हुई थी, जिससे उत्तर प्रदेश भी सर्द हवाओं से भर उठा था। आज उसके पास कई थैले थे जिन्हें दीवार पर टिका कर वह लॉक खोल रहा था। किंतु उसकी उँगलियां ठंड से इतनी सिकुड़ गई थीं कि वह चाबी ठीक से पकड़ नहीं पा रहा था।

तभी सुनिधि आ गई थी और दरवाजा खोल कर दोनों भीतर पहुँचे सुनिधि ने सबसे पहला काम यह किया कि चाय के लिए पानी उबालने लगी। कुछ क्षणों के बाद दोनों के हाथ में चाय के ग्लास थे। चाय के गर्म घूँट से कुछ राहत पा कर सुनिधि ने आँखें इधर उधर फेर कर पूछा, 'आज बड़े थैले हैं तुम्हारे पास।'

'देखो जरा इनमें क्या है!' उसने दिखाया - तरह तरह की खाने की वस्तुएँ थीं और एक थैले में खूबसूरत नया स्वेटर था, 'ये सब तुम्हारे लिए।'

'बड़े खुश हो।'

'हाँ आज पहली बार वेतन मिला है। सोने में सुहागा यह कि एक और अच्छी बात हुई है।'

'इतनी देर क्यों लगा रहे हो बताने में**?**'

'बात यह है कि तुम जानती ही हो, मैं अखबारों के लिए कभी कभी लिखता रहा हूँ। आज सुबह जब मैं यूनिवर्सिटी के लिए निकल रहा था तभी 'जनादेश' के संपादक का फोन आया मेरे पास। वह कह रहा था कि मैं उसके अखबार के लिए नियमित कॉलम लिखूँ। मैंने अपने कॉलम का नाम भी तय कर दिया है 'अप्रिय'।'

'हमेशा प्रिय बोलने वाला रतन कुमार तू अप्रिय कैसे लिखेगा रे?' सुनिधि हँसी, उठ कर आलमारी तक गई, लौटते समय उसके पास रेड वाइन की एक बॉटल थी, 'ये खुशी चाय नहीं मदिरा से सेलिब्रेट की जाएगी मेरे कॉलमिस्ट।'

' शब्दों के शार्ट फार्म (लघु रूप) दरअसल सत्य को छुपाने और उसे वर्चस्वशाली लोगों तक सीमित रखने के उपाय होते हैं। अगर तुम सत्ता से लड़ना चाहते हो तो उसकी प्रभुता संपन्न संस्थाओं और व्यक्तियों को उनके पूरे नाम से पुकारो।'

रतन कुमार के स्तंभ 'अप्रिय' की पहली किस्त से साभार

स्वयं रतन कुमार को अंदाजा नहीं था कि उसका स्तंभ 'अप्रिय' इतना लोकप्रिय हो जाएगा। वह न पेशेवर पत्रकार था न राजनीतिक विश्लेषक लेकिन 'अप्रिय' ने पत्रकारिता, राजनीति, समाज में इतनी जल्दी जो ध्यानाकार्षण और शोहरत हासिल किया, वह बेमिसाल था। उसकी लोकप्रियता का आकलन इससे भी किया जा सकता है कि बांग्ला, उर्दू और गुजराती के अखबारों ने इसे अपने अपने अखबार में छापने के लिए जनादेश के संपादक से अनुमति माँगी थी। जबकि इसी प्रदेश के एक अंग्रेजी अखबार का रतन कुमार से अनुरोध था कि वह जनादेश के बदले उसके अखबार में लिखे।

अप्रिय की अभी तक की दस किस्तों ने रतन कुमार को एक नामचीन शख्सियत बना दिया था। ये दसों किस्तें वस्तुतः एक लेखमाला की तरह थीं जो शब्दों के लघुरूप और

कूट संरचनाओं (कोड) पर आधारित थी। उसने प्रारंभ में ही आज के अखबारी फैशन के विपरीत राजनीतिक दलो को उनके पूरे नाम से पुकारा था। उसे भाजपा, सपा, बसपा, माकपा, आदि को उस तरह नहीं पूरे नाम से लिखा था। इसका कारण बताते हुए उसने कहा : 'किसी राजनीतिक दल का पूरा नाम एक प्रकार से उसका मुख्तसर घोषणापत्र होता है।

उनके नाम के मूल और समग्र रूप में उनका इतिहास, उनके विचार सरोकार और जनता को दिखाए गए सपने शामिल रहते हैं।' उसने अपने मत को स्पष्ट करने के लिए माकपा का जिक्र किया था। उसने लिखा था: 'माकपा का मूल नाम भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) है। इस संज्ञा से पता चलता है कि इसका निर्माण कम्यूनिज्म, मार्क्सवाद, क्रांति और सामाजिक परिवर्तन के सरोकारों के तहत हुआ था। आप सभी को मालूम है कि तमाम की तरह यह पार्टी भी आज इन सब पर कायम नहीं है। इसलिए 'माकपा' उसके लिए एक रक्षाकवच है। यह संबोधन अपने उद्देश्यों से इस पार्टी के फिसलन को ढँकता है और ऐसे भ्रम की रचना करता है कि साम्यवाद और सर्वहारा कभी इसकी बुनियादी प्रतिज्ञा थे ही नहीं। यही बात अपने नाम का संक्षिप्तीकरण करने वाले अन्य राजनीतिक दलों पर भी लागू होती है।' इसे उसने कुछ दूसरे उदाहरणों से प्रमाणित भी किया था।

अगले दिन कुछ पाठकों ने काट करते हुए प्रतिक्रिया दी थी : आप दूर की हाँक रहे हैं। शार्ट फार्म महज वक्त और जगह की किफायत करने के इरादे से प्रचलन में लाए गए हैं। इस पर उसने अगली किस्त में उत्तर दिया था : 'फिर मुलायम सिंह यादव को मुसिया, नरेंद्र मोदी को नमो, सोनिया गांधी को सोगां और नारायण दत्त तिवारी को नांदति क्यों नहीं लिखा जाता।' उसने इन नामों को इस प्रकार नहीं लिखा था किंतु उसने अपने स्तंभ में लोगों की जाति हटा दी थी। अत: यहाँ पर अटल बिहारी वाजपेयी अटल बिहारी हो गए थे और शरद यादव सिर्फ शरद। उसने कई बाहुबली नेताओं को भी उनकी जाति से बेदखल कर दिया था। नतीजा यह हुआ कि बबलू श्रीवास्तव सिमट कर बबलू हो गए, धनंजय सिंह धंनजय, अखिलेश सिंह अखिलेश बन कर रह गए।

नतीजा यह निकला : संपादक को अनगिनत मेल और फोन मिले जिनमें अधिसंख्य रतन कुमार की तारीफ में थे। कई ने रतन कुमार का मोबाइल नंबर माँगा था। लेकिन संपादक ने किसी को नंबर नहीं दिया। इसकी एक वजह यह थी कि उसे शक था कि प्रशंसकों में कुछ रतन कुमार के विरोधी हो सकते हैं जिन्हें नंबर देना रतन कुमार को खतरे में डालना था। दूसरा कारण यह था कि रतन कुमार ने संपादक को अपना फोन नंबर देने से रोक रखा था। क्योंकि आँखों के कष्ट के कारण मोबाइल स्क्रीन पर

एस.एम.एस देखने पढ़ने में उसे दिक्कत होती थी। फिर भी जाने कहाँ से लोगों ने पता कर लिया था और उसे अपने कॉलम पर प्रतिक्रियास्वरूप प्रतिदिन अनगिनत संदेश मिलते। वह उन्हें पढ़ता नहीं था। शाम को सुनिधि के फ्लैट पर वह अपना मोबाइल सुनिधि को दे देता था। और कहता था, 'तुम पढ़ कर सुनाओ।'

ऐसा नहीं कि उन संदेशों में उसकी शान में कसीदे ही पढ़े गए होते थे। विरोध की भी आवाजें रहतीं। अनेक पार्टियों और नेताओं के समर्थकों ने उसके खिलाफ राय दी थी। जिसे उन्होंने पत्रों और प्रेस विज्ञप्तियों के मार्फत दैनिक जनादेश में भी अभिव्यक्त किया था। इनका मत था कि रतन कुमार उनके नेताओं को अपमानित करने के इरादे से उनके नाम को तोड़मरोड़ रहा है। उन्होंने तोहमत लगाई थी कि वह इस काम के एवज में भारतीय लोकतंत्र की दुश्मन किसी विदेशी एजेंसी से अनुदान पा रहा है।

अगले सप्ताह कुछ वरिष्ठ अधिकारी भी उससे खफा हो गए थे। क्योंकि उसने अपने स्तंभ में उन अधिकारियों के अविकल नामों की एक सूची प्रस्तुत की थी जो अपने नाम संक्षेप में लिखते थे। इस सूची से उनको कोई असुविधा नहीं हुई जिनके नाम दूसरों ने प्यार से अथवा अपनी सहूलियत के लिए छोटे कर दिए थे। लेकिन जिन्होंने अपनी संज्ञा का नवीनीकरण अपने आप किया था वे रतन कुमार से बहुत नाराज थे या उसे पागल, सनकी कहते हुए उस पर हँस रहे थे। रतन कुमार ने सूची में बी.आर. त्रिपाठी को बचई राम त्रिपाठी, जी.डी. शर्मा को गेंदा दत्त शर्मा, पी.एस. अटोरिया को पन्ना लाल अटोरिया लिखा था और कोष्ठक में कहा था : (कृपया इनकी जाति हटा कर इन्हें पढ़ें)। सूची के अखीर में उसने टिप्पणी की थी : 'जो शख्स अपने नाम को असुंदर होने के कारण छुपा रहा है वह दरअसल अपने यथार्थ को छुपा रहा है। यही नहीं, वह सौंदर्यविरोधी कार्रवाई भी कर रहा है क्योंकि उसका नाम रखते वक्त उसके पिता, माँ, दादी, बाबा आदि के मन में जो ममता और सुंदरता रही होगी, वह उसका तिरस्कार कर रहा है।

यह अनायास नहीं है कि यथार्थ और सौंदर्य के उपासक प्रायः अपने नामों को संक्षिप्त नहीं करते हैं। रवींद्रनाथ टैगौर, कबीरदास, तुलसीदास, यामिनी राय, विवान सुंदरम्, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामचंद्र शुक्ल, हबीब तनवीर, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने अपने नाम को छोटा करने की जरूरत नहीं महसूस की थी। प्रेमचंद जैसे उदाहरण जरूर हैं जो धनपत राय से प्रेमचंद बन गए थे किंतु ध्यान रहे, यह नाम संकीर्ण करने का उदाहरण नहीं है दूसरी बात यह ब्रिटिश हुकूमत के दमन से बचने का तरीका था और तीसरी बात धनपत राय के प्रेमचंद बनने का निर्णय उनका नहीं था बल्कि जमाना पत्रिका के संपादक दया नारायण निगम ने यह काम किया था।'

अभी 'पूरे नाम से पुकारो' विवाद चल ही रहा था कि उसने स्तंभ की पाँचवीं किस्त का प्रारंभ करते हुए लिखा था : 'किसी सत्ता से भिड़ने का सबसे कारगर तरीका है कि उसके समस्त सूत्रों, संकेतों, चिह्नों, व्यवहारों, रहस्यों, बिंबों को उजागर कर दो। हर सत्ता अपनी हिफाजत के लिए - शोषण और दमन करने की वैधता प्राप्त करने के लिए - समाज में बहुत सारी कूट संरचनाएँ तैयार करती है। ये कूट संरचनाएँ एक प्रकार से पुरानी लोककथा के राक्षस की नाभि हैं जहाँ उसका प्राण बसता है। वक्ष पर आघात करने से, गरदन उतार देने से वह राक्षस नहीं मरता है। वह मरता है नाभि पर मर्मांतक प्रहार से। इसलिए सत्ता से लड़ना है, उसका शिकार करना है तो उसकी नाभिरूपी ये जो कूट संरचनाएँ हैं उन्हें उजागर करना होगा। खोल कर रख देना होगा। पाठको! हर कोड को डिकोड करो, हर सूत्र की व्याख्या करो, हर गुप्त को प्रकट करो। क्योंकि कूट संरचनाएँ सामाजिक अन्याय और विकृतियों के चंगुल में फँस कर फड़फड़ा रहे सामान्य मनुष्य के सम्मुख लौहयवनिकाएँ होती हैं।'

रतन कुमार इतना चर्चा में आ गया कि व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया जाने लगा था यहाँ तक कि इलाहाबाद के एक कथा साहित्य के आयोजन में भी उसे बतौर विशेष वक्ता आमंत्रित किया गया था। वहाँ उसने जो कहा उसका सारांश है : 'मित्रो कला को यथार्थ और यथार्थ को कला बना दो। क्योंकि दोनों अकेले रहने पर सत्ता संरचनाएँ होती हैं, इसीलिए संसार के समस्त श्रेष्ठ लेखकों ने यथार्थ को कला बनाया और कला को यथार्थ बनाया। ध्यान में हमेशा रहना चाहिए कि आख्यान यथार्थ का उपनिवेश नहीं है जहाँ यथार्थ स्वयं को लाभकारी और मनमाने ढंग से काबिज कर ले। साथ ही आख्यान कला की तानाशाही भी कदापि नहीं है जो अपनी सनकों का भार लादती फिरे और जीवन तथा समाज की आवाजों को अनसुना करती रहे।'

वाराणसी के संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित एक सेमिनार में उसके उद्गार ने वहाँ कोहराम मचा दिया था। उसने मत व्यक्त किया था : 'संस्कृत भी एक कूट संरचना है। इसके समस्त साहित्य और ज्ञान को बोलियों में लिखना इस सत्ता संरचना का विखंडन होगा। संस्कृत के श्लोकों, मंत्रों, कवित्त को अवधी, ब्रज, मागधी, बुंदेलखंडी में बोलो तो उनकी रहस्यमयता, अंहकार, श्रेष्ठता, महात्म्य और वर्चस्व की किलेबंदी ढह जाएगी।'

वाराणसी से लौटते वक्त वह बाबा के पास प्रतापगढ़ में रुक गया था। बाबा बहुत खुश हुए थे, जैसे वह अभी भी बच्चा हो। अपने बगल बैठे हुए रतन कुमार का सिर उन्होंने अपनी गोद में रख कर उसके बालों को सहलाया, 'बचवा तुम्हारी फोटू अखबारों में छपती है देख कर छाती चौड़ी हो जाती है।'

'बाबा फोटो ही देखते हो या मेरा लिखा पढ़ते भी हो।'

'पढ़ता हूँ पर कितना समझ पाता हूँ, पता नहीं।'

'क्या समझे हो?'

'यही कि तू बड़ा दिमागवाला हो गया है।' बाबा ने हँस कर उसके बालों को हिलोर दिया, 'मालुम है, एक दिन कलक्टर साहेब मुझे बुलवाए थे। कप्तान भी वहीं बैठे थे। दोनों बड़ी देर तक तुम्हारे बारे में पूछते रहे।'

वह चौंक कर उठ बैठा, 'मेरे बारे में पूछते रहे या पूछताछ करते रहे?'

'बिलावजह शक मत किया कर। कलक्टर और कप्तान साहेब दोनों तुम्हारी तारीफ कर रहे थे और पूछ रहे थे तेरे बचपन के बारे में, तेरी आँखों, तेरी आदतों के बारे में। उन्होंने बड़े गौर से मेरी बातें सुनीं। चाय पिलाई। मेरा तो रुआब बढ़ गया रे रतन।' बाबा की आवाज भावुकता के कारण भर्रा उठी थी।

उसने इस यात्रा में भी दोहराया था, 'बाबा चलो न मेरे साथ। मेरा बहुत मन है कि तुम मेरे पास रहो।'

बाबा ने भी दोहराया था, 'अब आखिरी बेला है मेरी जिंदगी की। जहाँ जिया वहीं मरूँ बस यही ख्वाहिश है।'

वह अकेले ही लौटा था। जब वह पहुँचा, रात हो चली थी। पहले सोचा कि सुनिधि के फ्लैट पर चला जाए, लेकिन उसने घड़ी देखी और मन बदल लिया। रेस्टोरेंट में खाना खा कर सीधे अपने मकान पर आ गया। वह अभी घर में घुसा ही था कि पुकार घंटी बजी... 'कौन हो सकता है इस वक्त' बुदबुदाते हुए उसने उठ कर दरवाजा खोला। वे चार लोग थे जो भीतर घुसे थे। आते ही उनमें से एक ने रतन कुमार को धकेल दिया जिससे वह भहराता सँभलता मेज और बेड के बीच की जगह में गिर पड़ा। उनमें से दूसरा हँसा, 'अबे सूरदास की औलाद, दिखाई पड़ता नहीं और बड़का डिकोडबाज बने हो।' उसने अपना रिवाल्वर निकाला, 'सिर्फ एक बार दगेगी ये और टिटहरी जैसा तू खत्म।' उसने रतन कुमार को एक लात लगाई, 'शांती से रह और शांति से सबको रहने दे पत्रकार बनने का शौक क्यूँ चर्राया है? मास्टर है मास्टरी कर।' जाते समय चारों ने हाथ पैर रतन कुमार पर आजमाए थे और एक ने लंबी फालवाला कोई औजार उसकी गरदन पर रख कर कहा था, 'ऐ काँणे अभी मार दूँ तुझको।'

उनके चले जाने के बाद रतन कुमार ने उठ कर दरवाजा बंद किया। उसने पाया कि वह डरा हुआ है लेकिन उसमें मृत्यु की दहशत नहीं थी। दरअसल उसका यह अधंविश्वास अभी तक बरकरार था कि उसकी मृत्यु सड़क दुर्घटना में होगी न कि किसी हथियार से। इसीलिए सामने आता हुआ कोई वाहन उसके लिए रिवाल्वर या धारदार हथियार से अधिक खौफनाक था। उसने एक गिलास पानी पिया था और थाने में रिपोर्ट लिखाने के लिए मजमून तैयार करने लगा था।

इत्तेफाक था या इसके पीछे कोई योजना थी कि रतन कुमार पर हमले के प्रसंग ने तूल पकड़ लिया। एक अन्य समाचारपत्र ने रायशुमारी के लिए उपरोक्त प्रश्न को दूसरे ढंग से पूछा था : रतन कुमार पर हमले की बात झूठ का पुलिंदा है?

रतन कुमार प्रसंग की मीडिया में जो इतनी अधिक चर्चा हो रही थी, उसके बारे में बहुत सारे लोगों का मानना था कि यह मीडिया के भेड़ियाधसान और परस्पर होड़ का नतीजा है। कुछ इसमें मुख्य विपक्षी दल का हाथ खोज लिए थे जिसके अनुसार सरकार की फजीहत करने के लिए विपक्षी नेता ने भीतर ही भीतर इस प्रसंग की आँच को हवा दी थी। तीसरी चर्चा, जो आमतौर पर पत्रकारों के बीच ही सीमित थी, यह कि ये रतन कुमार छटा हुआ अंधा है। कॉलम की शोहरत से पेट न भरा तो ये नया शगूफा छेड़ दिया। फिलहाल वस्तुस्थिति यह थी रतन कुमार के मुद्दे पर माहौल गर्म हो रहा था।

एक अखबार ने वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक का साक्षात्कार छापा था जिसमें सवाल था : रतन कुमार के हमलावरों को पकड़ सकने में पुलिस विफल क्यों रही है? इसका जवाब उसने यूँ दिया था : रतन कुमार पुलिस का सहयोग नहीं कर रहे हैं। हम उन पर आरोप कतई नहीं लगा रहे हैं कि उनकी दिलचस्पी गुनहगारों को पकड़े जाने से ज्यादा इस बात में है कि पुलिस बदनाम हो लेकिन इतना अवश्य कहना चाहेंगे कि उनके बयान में इतने अधिक अंतर्विरोध हैं कि उन पर हमले की बात गढ़ी गई दास्तान लगने लगती है। रतन कुमार हमलावरों का न हुलिया बता पाते हैं न नाम। कहते हैं कि नाम बताने का अपराधियों ने कष्ट नहीं किया और हुलिया बताना इसलिए मुमकिन नहीं क्योंकि उन्हें साफ दिखाई नहीं पड़ता है। बस इतना सुराग देते हैं कि दो मोटे थे दो पतले। सबसे मुश्किल बात यह है कि रतन कुमार को अपने से किसी की दुश्मनी से साफ साफ इनकार है और ऐसी किसी वजह से हमला होने को आशंका को वह खारिज करते हैं। दूसरी तरफ वह कहते हैं कि उनके घर पर न लूटपाट हुई न छीनाझपटी। अब ऐसी दशा में अपराधियों को गिरफ्तार करना काफी मुश्किल हो जाता है किंतु हम पूरी कोशिश कर रहे हैं और उम्मीद है कि जल्द ही सच्चाई पर से परदा हटेगा।

उपर्युक्त अखबार के प्रतिद्वंद्वी अखबार ने बढ़त लेते हुए अपने संपादकीय पृष्ठ पर आमने सामने स्तंभ में राज्य के पुलिस महानिदेशक और रतन कुमार मय अपनी अपनी फोटो के परस्पर रूबरू थे। पुलिस महानिदेशक खल्वाट खोपड़ी वाला था। उसकी वर्दी पर अशोक की लाट की अनुकृति चमन रही थी और उसकी खोपड़ी के ऊपर धरी कैप के सामने भी अशोक की लाट टँगी हुई थी, इसलिए उसका खल्वाट अदृश्य था और उनसठ का वह 65 का दिखने के बजाय 55 का लग रहा था। रतन कुमार की तसवीर से लग रहा था कि वह एक कृशकाय नौजवान है। उसके होंठों पर मामूलीपन था और आँखों में चौकन्नेपन की फ़ुर्ती थी लेकिन कुल मिला कर लगता था कि उसकी नींद पूरी नहीं हुई है। ऐसा उसके बिखरे हुए बालों और पुरानी टाइप के कालर वाली कमीज के कारण भी हो सकता था।

पुलिस महानिदेशक की टिप्पणी का सार था : रतन कुमार एक महत्वपूर्ण पत्रकार हैं और मैं स्वयं उनका स्तंभ 'अप्रिय' बड़े चाव से पढ़ता हूँ। मेरे परिवार के सदस्य मुझसे भी अधिक उनके प्रशंसक हैं। इसके बावजूद कहना चाहता हूँ कि प्राथमिकी में उनकी शिकायतें ठोस तथ्यों पर आधारित नहीं हैं। उनके स्तंभ को ध्यानपूर्वक पढ़नेवाले जानते होंगे कि वह ऐसी बातें लगातार लिखते रहे हैं जो मौलिक, विचारोत्तेजक होने के बावजूद यथार्थवादी जरा कम होती हैं जबकि लेखन का महान तत्व है यथार्थ। कहना जोखिम भरा होने के बावजूद कह रहा हूँ कि उनकी प्राथमिकी भी जैसे उनके स्तंभ की एक किस्त हो। फिर भी हम गहन छानबीन कर रहे हैं और हमारी तफ्तीश जरूर ही किसी मुकाम पर पहुँच जाएगी। निश्चय ही हमें मालूम है कि रतन कुमार जी स्तंभकार पत्रकार होने के साथ साथ विश्वविद्यालय में सम्माननीय अध्यापक भी हैं, इसलिए कोई मुलाजिम उनके मामले में लापरवाही, बेईमानी करने की गुस्ताखी नहीं कर सकता। अंत में श्री रतन कुमार जी से अनुरोध है कि कृपया वह अपने आरोप के समर्थन में कुछ तथ्य और प्रमाण भी पेश करें, ताकि हमें अपराधियों तक पहुँचने में मदद मिले।

रतन कुमार ने अपना पक्ष एक संबोधन के रूप में प्रस्तुत किया था। उसमें लिखा था : प्रिय दोस्तो! यह बिल्कुल सही है कि अपने खिलाफ हुई कारगुजारी को उजागर करने वाले तथ्य और सबूत मैं पेश नहीं कर पा रहा हूँ लेकिन क्या तथ्यों और सबूतों को मुहैया कराना - उनकी खोज करना और उन्हें सुरक्षित रखना पीड़ित का ही कर्तव्य होता है। इन चीजों की नामौजूदगी के कारण पुलिस कह रही है कि उसे अपराधियों को गिरफ्तार करने में असुविधा हो रही है। हमलावारों की गिरफ्तारी और दंड से अधिक मेरी रुचि इसकी पड़ताल में है कि वे लोग क्यों मेरे विरुद्ध हैं? बेशक वे चार गुंडे थे

और उन्हें किसी ने हमला करने का आदेश दिया था। मैं जानना चाहता हूँ कि मेरी किस बात से कोई इतना प्रतिशोधमय हो गया? मैं भी कहता हूँ कि वे लुटेरे नहीं थे। मेरे पास लूट के लिए कुछ खास है भी नहीं। मेरे घर में कोई कीमती सामान नहीं, सिवा मेरी कलम, कागज और मेरे दिमाग के। मेरे घर का तो पंखा भी बहुत धीमी चाल से टुटरूँ टूँ चलता है और खड़खड़ करता है। इसलिए तय है कि कोई या कुछ लोग मुझसे रंजिश रखते हैं लेकिन क्यों, इसी का मुझे जवाब चाहिए। किंतु पुलिस हाथ पर हाथ धरे बैठती है और रटंत लगाए है कि कानून बगैर सबूतों के काम नहीं करता। साथियो, सबूत की इसी लाठी से राज्य ने हर गरीब, प्रताड़ित और दुखियारे को मारा है। आज इस देश में असंख्य ऐसे परिवार हैं जो अन्न, घर, स्वास्थ्य, शिक्षा से वंचित हैं किंतु राज्य इनकी पुकार सुनने की जरूरत नहीं महसूस करता है। क्योंकि इन परिवारों के पास अपनी यातना को सिद्ध करने वाले सबूत नहीं हैं। हत्या, बलात्कार, भ्रष्टाचार के अनगिनत मुजरिम गुलछर्रे उड़ाते हैं क्योंकि उनके अपराध को साबित करने वाले सबूत नहीं हैं।

पुलिस, सेना जैसी राज्य की शक्तियाँ जनता पर जुल्म ढाती हैं तथा लोगों का दमन, उत्पीड़न, वध, बलात्कार करके उन्हें नक्सलवादी, आतंकवादी बता देती हैं और कुछ नहीं घटता है। क्योंकि सबूत नहीं है। इसी सबूत के चलते देश के आदिवासियों से उनकी जमीन, जंगल और संसाधन छीन लिए गए क्योंकि आदिवासियों के पास अपना हक साबित करने वाले सबूत नहीं हैं। न जाने कितने लोग अपने होने को सिद्ध नहीं कर पा रहे हैं क्योंकि उनके पास राशन कार्ड, मतदाता पहचान पत्र, बैंक की पासबुक, ड्राइविंग लाइसेंस या पैन कार्ड नहीं हैं। वे हैं लेकिन वे नहीं हैं। दरअसल इस देश में सबूत ऐसा फंदा है जिससे मामूली और मासूम इनसान की गरदन कसी जाती है और ताकतवर के कुकृत्यों की गठरी को पर्दे से ढांका जाता है।

और जब यह मुद्दा, जो प्रदेश की विधान सभा के नेता विपक्ष के शब्दानुसार मुद्दा नहीं बतंगड़ था, टेलिविजन के एक राष्ट्रीय चैनल पर उठ गया तो प्रदेश के मुख्य सचिव ने एक ही तारीख में दो बैठकें बुलाईं। पहली बैठक 15.40 पर और दूसरी 16.15 पर। पहली बैठक प्रदेश के सूचना निदेशक के साथ हो रही थी। मगर उसके पहले 'मुद्दा नहीं बतंगड़ है' की चर्चा।

विधान सभा के नेता विपक्ष की एक प्रेस कांफ्रेंस में रतन कुमार पर हमले के बारे में प्रश्न होने पर उन्होंने हँसते हुए कहा था - यह बतंगड़ है, जो सरकार के पुलिस महकमे की शिथिलता और बदजबानी के कारण मुद्दा बनता जा रहा है। मैं इसे दिशाहीन नहीं दिशाभ्रष्ट सरकार कहता हूँ। इस सरकार की प्रत्येक योजना तथा जाँच की तरह रतन

कुमार जी का प्रकरण भी दिशाभ्रष्ट हो गया है। हालाँकि रतन कुमार जी का भी कसूर है कि वह साफ साफ बता नहीं रहे हैं कि हमला सरकार द्वारा प्रायोजित है जो लोकतंत्र के चौथे स्तंभ का गला घोटने के इरादे से किया गया है।' इसके बाद उन्होंने कई अन्य प्रश्नों का जवाब देने के बाद अंत में मुख्यमंत्री से इस्तीफे की माँग की थी।

सत्ता पार्टी के मुँहजोर प्रवक्ता ने शाम की नियमित प्रेसवार्ता में जवाब दिया : 'रतन कुमार पर हमले के शक की सुई माननीय नेता, विपक्ष की ओर घूम सकती है। क्योंकि वह अपने नाम को शार्ट फार्म में लिखते हैं और अंत में अपनी जाति भी लिखते हैं, जिसका रतन कुमार जी हमेशा विरोध करते रहे हैं। लगता है कि माननीय नेता विपक्ष को इससे मिर्ची लग गई है, जो वह इस प्रकार अनापशनाप बोल रहे हैं। उनके बारे में हमारा यही कहना है कि उन्होंने अपना मानसिक संतुलन खो दिया है।'

अगली प्रेस वार्ता में नेता विपक्ष ने उस प्रवक्ता को 'यमला पगला दिवाना' कहा था और कहा था, 'भगवान मूर्खों को सद्बुद्धि दे।' और हँस पड़े थे। उनका यह बयान बाद की बात है, उसके दो दिन पहले जब मुख्य सचिव ने मध्याह्न में दो बैठकें की थीं और 15.40 पर सूचना निदेशक उनके कमरे में थे। सूचना निदेशक 2001 बैच का आई.ए.एस. अधिकारी था और चाहे जो सरकार हो, वह महत्वपूर्ण पदों पर तैनात रहा।

'तुम ये बताओ कि रतन कुमार क्या बला है**?**' मुख्य सचिव ने एक फाइल पर हस्ताक्षर करते हुए पूछा।

'सर! सर बस ये है कि सर... रतन कुमार वाकई एक बला है सर!' सूचना निदेशक कुशल वक्ता था किंतु अपने से वरिष्ठ अफसरों, मंत्रियों के सामने घबरा कर बोलने का अभिनय करता था। वस्तुतः यह उसका सम्मान दर्शाने का तरीका था कि महोदय, आप देखें आप इतने खास है कि आपने सामने मेरी सिट्टी पिट्टी गुम हो गई है। उसकी यह अदा मुख्य सचिव को पसंद आई।

'चाय पियो।' मुख्य सचिव अपनेपन से बोला। वह अपना बड़प्पन दिखा रहा था कि मातहत अफसरों के साथ उसके बर्ताव में सरलता रहती है।

सूचना निदेशक ने ऐसा धन्यग्रस्त चेहरा बनाया कि जैसे मुख्य सचिव के अपनत्व से उसकी घबराहट खत्म हो गई। उसने 'थैंक यू सर' कह कर चाय का घूँट लिया, 'सर, ये रतन कुमार कोई प्रोफेशनल पत्रकार नहीं है, यूनिवर्सिटी में लेक्चरार भर है, सर। अपने कॉलम में क्या कूट रचना, डिकोड वगैरह बकता रहता है सर।'

'पर काफी पढ़ा जाता है वह। सुनते हैं कुछ दिन आंध्र प्रदेश के आदिवासियों के बीच रहने के कारण उसका कॉलम नहीं छपा तो अखबार की बिक्री घट गई।'

सूचना निदेशक को लगा, मुख्य सचिव रतन कुमार का प्रशंसक है सो उसने कहा, 'कुछ भी हो सर, ये शख्स है जीनियस।'

'अच्छा!' मुख्य सचिव ने ऐसे कहा जैसे उसे कोई नई जानकारी मिली हो, 'तुम ये बता सकते हो कि रतन कुमार के बारे में अफवाहें क्या हैं?'

'अफवाहें?' सूचना निदेशक ने न समझने का अभिनय किया। हालाँकि वह जान गया था, अफवाहें से मुख्य सचिव का आशय है, रतन कुमार की कमजोरियाँ।

'हाँ अफवाहें।' मुख्य सचिव बोला, 'हर मशहूर आदमी के बारे में अफवाहें होती हैं मसलन कुछ सच्ची झूठी चर्चाएँ जो अंततः उसके खिलाफ जाती हैं।'

'सर, एक यह कि रतन कुमार को दिखता बहुत कम है।'

'यह अफवाह है या फैक्ट।'

'फैक्ट सर फैक्ट...।' उस पर फिर सिट्टी पिट्टी गुम होने का दौरा पड़ा।

मुख्य सचिव ने फिर बड़ापन दिखाया, 'इसके परिवार में कौन कौन हैं?'

'एक बूढ़ा बाबा है सर। बाकी लोग, इसके बचपन में एक एक्सीडेंट में मर गए थे।'

'बीवी?'

'शादी नहीं हुई, सर।'

'आँखों के कारण कौन लड़की चुनेगी इसे।'

'नहीं सर, इसकी एक प्रेमिका है सुनिधि। सुनते हैं बचपन की दोस्ती है।'

'ओह!' मुख्य सचिव हँसा।

'जी सर।' सूचना निदेशक मुस्कुराया।

'और कोई बात?'

'और सर।' अब तक सूचना निदेशक को यकीन हो गया था कि मुख्य सचिव रतन कुमार का प्रशंसक बिल्कुल नहीं है, 'सर इसका जो नाटक है कि चीजों को, व्यक्तियों और संस्थाओं को उनके पूरे नाम से पुकारो, सर ये उसकी एक कमी के कारण है। सुनते हैं कि इतना पढ़ाकू होने के बावजूद इसे शार्ट फार्मवाले लफ्जों के मतलब समझ में नहीं आते। लोग बताते हैं कि इसीलिए ये दिमाग से तेज होते हुए भी किसी कंपटीशन में सेलेक्ट नहीं हुआ। सर ये मो.क.चं.गां. का अर्थ नहीं जानता था जबकि गांधी वांड्मय इसको रटा हुआ था।'

'क्या इसको बहुत कम दिखता है?' मुख्य सचिव ने पूछा।

'काफी कम। किताबें पत्रिकाएँ आँखों से सटा कर पढ़ता है तब अक्षर दिखते हैं। सर इसी इसलिए पढ़ते वक्त इसकी नाक कागज पर रगड़ खाती चलती है।'

'और कुछ?'

'सर इसकी याददाश्त बड़ी जबरदस्त है। एकदम कंप्यूटर है इसका दिमाग। सब सेव हो जाता है सर।'

'शराब वगैरह ज्यादा पीता है?'

'शायद ऐसा नहीं है सर।' सूचना निदेशक ने मायूस हो कर कहा।

'इसको सरकार से पत्रकार कोटे में मकान वगैरह मिला है?'

'नहीं सर।'

'सरकार से कोई फायदा?'

'नो सर।' लग रहा था, सूचना निदेशक निराशा के मारे रो पड़ेगा।

'इसकी उम्र क्या है?'

'यंग है सर।'

'कोई अपनी प्रापर्टी बनाई है इस बीच?'

'नहीं सर।'

'ठीक।' यह इशारा था कि बैठक खत्म। इस समय घड़ी में शाम के चार बज रहे थे। 16.15 पर मुख्य सचिव ने जो दूसरी बैठक की उसके विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि उस बैठक के बारे मुख्य सचिव के निजी सचिव का कहना है कि ऐसी कोई बैठक रखी ही नहीं गई थी। उस दौरान साहब अपने कक्ष में अकेले बैठे मोबाइल पर लंबी वार्ता कर रहे थे जो लगभग पैंतालीस मिनट हुई होगी। जबकि चपरासी का कहना है कि एक महिला कमरे में गई थी और कुछ देर बाद लौट आई थी।

एक अंदेशा है कि अपराध अनुसंधान विभाग का महानिरीक्षक मुख्य सचिव के कमरे में घुसा था, वह समय ठीक 16.15 का था। उसके विभाग के एक इंस्पेस्टर ने बीस दिन रतन कुमार की खुफिया पड़ताल करके एक रिपोर्ट बनाई थी। मुख्य सचिव के कमरे में जाते समय महानिरीक्षक के दाएँ हाथ की चुटकी में उस रिपोर्ट की फाइल थी और 16.50 पर कमरे से निकलने वक्त वह फाइल नहीं थी।

मुख्य सचिव के विशेष कार्याधिकारी और स्टाफ अफसर की जानकारियों के मध्य भी इस बारे में मतैक्य नहीं था। विशेष कार्याधिकारी ने अपनी अघोषित तीसरी पत्नी से उसके हाथ के बने गलावटी कबाब खाते हुए कहा था कि मुख्य सचिव आज चार बजे ही दफ्तर छोड़ गया था। सूचना निदेशक से बैठक खत्म होते ही वह गुपचुप गाड़ी में बैठ कर कहीं चला गया था। और तीन घंटे बाद लौटा था। 'जानती हो वह कहाँ गए थे?' उसने अघोषित तीसरी पत्नी से पूछा था। पत्नी बोलती कम थी, उसने भौंहों को उचका कर पूछा, 'कहाँ?' विशेष कार्याधिकारी कबाब लगे हाथ को उसके पल्लू से पोछते हुए फुसफुसाया, कि मुख्य सचिव आगामी चुनाव में मुख्यमंत्री पद के सबसे मजबूत दावेदार विपक्षी नेता के पास गए थे। 'जानती हो क्यों?' उसने पूछा था जिसके प्रत्युत्तर में पत्नी की भौंहें उचकी थीं। तब उसने कहा था, 'ये मुख्यमंत्री और भावी मुख्यमंत्री दोनों के हाथ में लड्डू पकड़ाते हैं।' इसके बाद उसने अघोषित पत्नी को खींच कर ऐसी हरकत की थी कि वह उसे धक्का दे कर हँसने लगी थी।

स्टाफ अफसर की डफली का अलग राग था। उसके अनुसार मुख्य सचिव सूचना निदेशक के साथ ही निकले थे और सीधे मुख्यमंत्री के कक्ष में चले गए थे। उनके साथ कुछ जरूरी फाइलें भी गई थीं जिनके बारे में मुख्यमंत्री ने वार्ता करने का निर्देश दिया था।

अब सही क्या था और गलत क्या था इसे ठीक ठीक बताना असंभव हो चुका था। एक प्रकार से देखा जाय, सही और गलत का विभाजन ही समाप्त हो गया था। दरअसल देखें तो मुख्यसचिव की उपस्थिति एक टेक्स्ट हो गया था जिसके अपने अपने पाठ

थे। इस तरह का प्रत्येक पाठ सत्य के ढीले ढाले चोले में हकीकत का एक अंदाजा भर होता है, वह जितना यथार्थ हो सकता है उतना ही मिथ्या और संसार की कौन सी मिथ्या है जो कमोबेश यथार्थ नहीं होती है जैसे कि हर कोई यथार्थ रंचमात्र ही सही, मिथ्या अवश्य होता है। इसीलिए प्रत्येक यथार्थ के अनेक संस्करण होते हैं, उनकी कई कई व्याख्याएँ होती हैं लेकिन सर्वाधिक कठिन घड़ी वह होती है जब किसी ऐसी स्थिति से सामना होता है जिसके बारे में यह बूझना असंभव हो जाता है कि वह वास्तविकता है अथवा आभास अथवा वह ये दोनों है अथवा ये दोनों ही नहीं है। मुख्य सचिव की दूसरी बैठक का मर्म ऐसे ही मुकाम पर पहुँच गया था।

गौरतलब यह है कि जिस प्रकार सूचना निदेशक के साथ बैठक का रतन कुमार से ताल्लुक था उसी प्रकार क्या दूसरी बैठक भी रतन कुमार के प्रसंग से जुड़ी थी अथवा यह कयास बिल्कुल बकवास है? यदि रतन कुमार को ले कर मुख्य सचिव ने दूसरी बैठक भी की थी तो उसमें क्या चर्चा हुई इसका उत्तर ढूँढ़ सकना अब नामुमकिन दिखता है। लगभग इससे भी ज्यादा पेचीदा मसले ने रतन कुमार को घेर लिया था। जब मुख्य सचिव ने सूचना निदेशक तथा नामालूम के साथ बैठकें की थीं, उसके अगले दिन रतन कुमार के सिर में तेज दर्द था और आँखों में कड़वाहट थी। वह बीती रात जाग कर अपना कॉलम लिखता रहा था जिसमें उसने यह अभिव्यक्त किया था:

'मित्रो, धन शक्ति देता है और शक्ति से धन आता है। और बाद में धन स्वयं में शक्ति बन जाता है, इसलिए अकूत से अकूत धन की लिप्सा उठती है और भ्रष्टाचार का जन्म होता है। अतः भ्रष्टाचार से भिड़ना है तो शक्ति के पंजे मरोड़ने होंगे। मैं दोहराव का आरोप सहने का खतरा उठाते हुए भी कहना चाहूँगा कि भ्रष्टाचार से अर्जित संपदा विदेशी खातों में जमा है और इन खातों के कोड हैं।'

अपना स्तंभ लिख चुकने के बाद उसने सोचा था, मैं सो जाऊँगा और दोपहर तक सोता रहूँगा। पर हमेशा की तरह वही हुआ कि फोन नंबर वितरित न करने की होशियारी के बावजूद उसका फोन बजने लगा था। वह जग कर चिड़चिड़ाया और फोन उठा कर बात करने लगा। वही बातें थीं : लोग हमले को ले कर अपना समर्थन दे रहे थे या पुलिस महकमे को निकम्मा कह रहे थे।

अब उसकी नींद उचट गई थी। उसने इधर उधर करके बाकी वक्त बिताया अथवा गँवाया फिर विश्वविद्यालय चला गया था। शाम को जब वह सुनिधि के फ्लैट में था तो उसका सिर दर्द से टीस रहा था और आँखों से लगातार पानी रिस रहा था। सुनिधि

चाय बना कर ले आई, साथ में खाने के लिए भी कुछ - 'कुछ आराम हुआ?' उसने रतन से पूछा।

'नहीं, वैसा ही है। लगता है, कुछ बेढंगा और अनचाहा हो रहा है।'

'हुआ क्या है?' सुनिधि घबरा गई थी।

'मेरी आँखों में लगातार पीड़ा रहती है और अँधेरा सा भरा रहता है। सो जाने पर पीड़ा खत्म हो जाती है पर अँधेरा बना रहता है। जबसे मेरे ऊपर हमला हुआ है, अंधकार और कष्ट मेरी आँखों का पीछा नहीं छोड़ रहे हैं। मुझे लगता है, कहीं मैं अंधेपन के गड्ढे में न गिरने वाला होऊँ। डॉक्टर के पास गया वह कहते हैं कोई खास बात नहीं है। इससे मुझे सकून मिला लेकिन मैं क्या करूँ कष्ट बरदाश्त नहीं होता और अंधकार से डर लगता है।'

'क्या इसकी वजह से देखने में भी कमी आई है?'

'अब इससे ज्यादा क्या कमी होगी।'

'डॉक्टर ने कुछ इलाज बताया?'

'नींद। डॉक्टर ने हँस कर कहा था, 'दो दिनों तक भरपूर नींद लो सब ठीक हो जाएगा' लेकिन लोग हैं कि सोने नहीं देते। मुझे फोन करते हैं और घर पर मिलने चले आते हैं।'

'तुम फोन बंद कर दिया करो।' सुनिधि की सलाह हुई।

'बाबा, बाबा के कारण मैं फोन बंद नहीं कर सकता। कब कोई चौपहिया उन्हें सड़क पर कुचलता हुआ चला जाय और मेरा फोन बंद रहे... मैं फोन को बंद कैसे रख सकता हूँ।'

'हर काल पर फोन क्यों फोन उठा लेते हो?'

'इसलिए कि फोन न उठाने के लिए स्क्रीन पर काल का ब्यौरा पढ़ना पड़ेगा और मैं स्क्रीन पर अक्षर और नंबर ठीक से पढ़ नहीं पाता हूँ। अक्षर और संख्याएँ मुझे चीटियों की तरह दिखती हैं। दूसरे, मैं डरता हूँ कि मोबाइल से निकलनेवाली तरंगें मेरी आँखों में घुस न जाएँ और मैं पूरा अंधा हो जाऊँ और...।'

'और!' सुनिधि उसके इस अंदरूनी घमासान को जान कर विकल थी।

'बाबा को कुछ हो जाने पर खुद बाबा नहीं, कोई दूसरा होगा मुझे खबर देने वाला...। हो सकता है वह फोन उसका ही हो जिसे मैं न उठाऊँ...।'

शायद अच्छे दिन खत्म हो चुके थे। आँखों की तकलीफ और अंधकार की समस्या से उसे बड़े जतन के बाद भी छुटकारा नहीं मिल रहा था। उसने किसी की सलाह पर ब्रह्ममूहुर्त में उठ कर ध्यान लगाना शुरू कर दिया था। उसने सोचा था कि आँखों की तकलीफ में न सही किंतु अँधेरे की शिकायत में कमी जरूर आएगी लेकिन सब कुछ उल्टा पुल्टा हो गया था। किसी आकृति, ध्वनि, गंध अथवा स्पर्श को याद करके ध्यान केंद्रित करने पर वह पाता कि ध्यान का वह केंद्र किसी अँधेरे से उदित हो रहा है। वह तय करता कि उन क्षणों में उसकी वेदना कुछ समय के लिए समय के घेरे से मुक्त हो जाए। हर कोई रूप आकृतियों से, ध्वनि ध्वनियों से, स्पर्श स्पर्शों से स्वतंत्र हो जाए। कुछ भी न बचे उसमें कुछ वक्त के लिए, शेष रहे केवल एक विराट अनुभूति। वह सभी से विरक्त और विस्मृत हो जाता था लेकिन अँधेरा उसका पीछा नहीं छोड़ता था। अंततः किसी उदात्त आध्यात्मिक आस्वाद के बजाय उसमें यह अहसास बचता था कि अथाह अँधेरे में संसार डूब गया है। या दुनिया पर अँधेरे की चादर बिछ गई है।

उसने इस बात की पड़ताल भी की कि क्या आँखों की तकलीफ और आँखों में अँधेरे का कोई संबंध हैं, क्योंकि दोनों का उभार एक साथ हुआ था। परखने के लिए उसने दर्द निवारक दवा खा ली थी। इससे उसकी पीड़ा में काफी कमी आ गई थी जो छः घंटे तक बरकरार रही थी किंतु अँधेरे की वह यातना, जब तक वह जगता रहता था, पिंड नहीं छोड़ती थी। बल्कि एक तरह से कहा जाय कि वह स्वप्न में भी अँधेरा देखता था। सपने में कोई वाकया, कोई किस्सा शुरू हो कर पूर्ण होता था तो वह अँधेरे की पृष्ठभूमि में होता था। जैसे अँधेरे का कोई पर्दा हो जिस पर स्वप्न नहीं स्वप्न के निगेटिव की फिल्म चल रही है। इस तरह उसका जीवन अँधेरे में था और उसका स्वप्न भी अँधेरे में था।

उसके लिखने पढ़ने में भी ये चीजें अवरोध डालने लगी थीं। उसका दर्द बढ़ जाता था इनसे। इस मुश्किल का निदान उसने यह सोचा था कि वह बोल कर लिखवा दिया करे और दूसरे से पढ़वा कर पढ़ लिया करे। लेकिन उसने पाया कि इस विधि को वह साध नहीं सका है। अपना कॉलम जब उसने बोल कर लिखाया तो उसमें न वह मौलिकता थी न गहराई जिनके लिए उसका 'अप्रिय' मशहूर था। उसमें प्रहार और बल भी न थे। अतः उसने वे पन्ने फाड़ डाले थे। उसने रास्ता यह ढूँढ़ा कि वह स्वयं से बोला था और स्वयं सुन कर अपनी चेतना की स्लेट पर लिख लेता था। इस प्रकार बोलने के पहले ही उसके अंदर 'अप्रिय' की पूरी अगली किस्त लिख उठी थी। तब उसी लिखे हुए को वह

बोला था जिसे सुनिधि ने लिपिबद्ध किया था। निश्चय ही यह लिखत उसके स्तंभ के रंगों और आवाजों का काफी कुछ हमरूप था। पढ़ने में भी उसने ढंग बदल लिया था। जब सुनिधि या उसका कोई छात्र उसे कोई पृष्ठ पढ़ कर सुनाता तो वह तुरंत हृदयंगम नहीं करता था। उस वक्त वह जो सुन रहा होता था उसे अपने दिमाग के टाइपराइटर पर टाइप करता जाता था फिर उसका दिमाग उस टाइप को अंदर ही अंदर पढ़ता था और सदा के लिए कंठस्थ कर लेता था। स्मरण शक्ति उसकी बेमिसाल पहले से ही थी, आँखों में दर्द रहने के बाद उसमें और इजाफा हो गया था। पहले उसे किसी पाठ को दोहराते वक्त यदा कदा अटकना भटकना भी पड़ सकता था, अब पूर्ण विराम अर्द्धविराम सहित अक्षरशः सुना सकने की क्षमता उसमें प्रकट हो चुकी थी।

दस दिन हुए होंगे, इतवार की सुबह शहर कोतवाल की गाड़ी उसके दरवाजे पर रुकी। कोतवाल सादी वर्दी में आया था, उसने रतन कुमार के ड्राइंगरूम के सोफा पर बैठते हुए कहा, 'मैं आपका प्रंशसक हूँ। इधर से गुजर रहा था, सोचा आपके यहाँ एक प्याली चाय पीता चलूँ।'

रतन कुमार ने कोतवाल को शक से देखा लेकिन ऊपर से अपनी सहजता बनाए रखी, 'आपको चाय पिला कर मुझे खुशी होगी। लेकिन मुझे ठीक से दिखता नहीं, दूध, पानी, चीनी में कोई चीज कम ज्यादा हो सकती है या दो या सभी चीजें।'

'ओह! मुझे माफ करें। वैसे भी मेरा मकसद आपसे मिलना था, चाय एक बहाना भर है। चाय पिलाने से बेहतर है, अपनी लाइब्रेरी दिखाएँ।'

उसने रतन कुमार के स्टडी में किताबों को देखा। कुछ को निकाल कर पन्ने भी पलटे थे। अखीर में हाथ की धूल झाड़ते हुए बोला था 'अच्छी किताबें हैं।'

'जी शुक्रिया।' रतन ने रस्म निभाया।

'आपकी खतरनाक किताबें नहीं दिखाई दे रही हैं जिन्होंने खतरनाक विचारों को पैदा किया।' कोतवाल मुस्कुरा कर बोला।

'वैसी किताबें वहाँ नहीं यहाँ हैं।' रतन कुमार ने हँस कर अपनी खोपड़ी की तरफ इशारा किया, 'जो आप देख रहे हैं उससे बड़ी लाइब्रेरी इधर है।' रतन कुमार से हाथ मिला कर कोतवाल विदा हुआ।

रतन कुमार को लगा कि यह एक भला आदमी है। उसे अपने ऊपर गुरूर भी हुआ कि शहर कोतवाल भी उसको पढ़ता और पसंद करता है। उसको तसल्ली हुई, शहर कोतवाल से पहिचान बुरे वक्त में काम आएगी।

वाकई जब बुरे दिन सघन हुए, सबसे पहले इस कोतवाल की ही याद आई थी।

आँखों का दर्द और अंधकार की दिक्कत अभी भी बनी हुई थी। जैसाकि पहले कहा जा चुका है कि शायद उसके अच्छे दिन खत्म हो गए थे। वह राँची से व्याख्यान दे कर अपने शहर आया तो सुबह का समय था। अलस्सुबह और देर रात में अपना शहर देखना हमेशा मोह जगाता है। इसी तरह की मनःस्थिति में वह अपने घर का ताला खोल रहा था। लेकिन ताला खुला हुआ था। वह खुद पर हँसा, 'सब कुछ याद हो जाता है पर ताला लगाना भूल जाता हूँ।' वह भीतर गया और पाया कि ताला लगाना वह भूला नहीं था बल्कि ताला टूटा हुआ था। उसने सामानों, चेक बुक, थोड़े से कैश और सुनिधि द्वारा दिए गए तोहफों की पड़ताल की, उन्हें अपनी आँखों पर रख कर देखा, सुरक्षित थे। उसका पूरा घर महफूज था मगर उलट पुलट दिया गया था। अच्छी तरह तलाशी ली गई थी उसकी नामौजूदगी में। हर जगह कागज, किताबें और कपड़े फैले हुए थे।

वह थाने में रिपोर्ट लिखाने गया जहाँ उसकी प्राथमिकी नहीं दर्ज हुई। थाना मुंशी की दलील थी कि जब चोरी हुई नहीं, न डाका न कोई नुकसान फिर जुर्म क्या हुआ? उसने कहा, 'मेरे कमरे की तलाशी ली गई है। सारे सामान बिखरे हैं।'

'किस चीज का तलाशी ली गई?' मुंशीजी ने पूछा।

'पता नहीं।'

'कुछ नुकसान हुआ?'

'नहीं।'

'किसी पर शक?'

'नहीं।'

'फिर यहाँ काहे को आए हैं? फालतू में टाइम खराब करते हैं पुलिस का अपना भी।'

थाने से निकलने पर उसने बड़ी शिद्दत से कोतवाल को याद किया था और मुलाकात के लिए कोतवाली चला गया था। आज वह वर्दी में कुर्सी पर बैठा था। उसकी वर्दी, बिल्ला, कैप उसके साथ थे और फब रहे थे। उसने कोतवाल को सब हाल सुनाया।

'कोई बात नहीं, हम दो तीन लोगों को भेज देते हैं वे सब सामान ठीक से लगा देंगे।' कोतवाल ने हमदर्दी जतायी।

'सवाल यह है कि ऐसा आखिर हुआ क्यों?'

'पता नहीं।' कोतवाल ने मजाक किया, 'लगता है उन्हें किसी और घर में जाना था भटक कर आपके यहाँ पहुँच गए।' उसने घंटी बजा कर चाय लाने का आदेश दिया।

चाय पीते हुए उसने पूछा, 'रतन जी आप राँची क्यों गए थे?'

'एक सेमिनार में।' उसने बताया।

'आप राँची ही क्यों गए सेमिनार में?'

'क्योंकि वहीं पर सेमिनार था।'

'हूँ।' उसने अल्पविराम दे कर कहा, 'आजकल नक्सल बेल्ट में ही सेमिनार होते हैं क्या? आप पिछले दिनों छत्तीसगढ़ में आदिवासियों के बीच रहे। इस बार भी आप राँची चले गए।'

'गया था, पर मैं आदिवासियों के बीच वक्त गुजारने गया था, बस।' उसे पसीना आ गया था।

'कोई बात नहीं। चाय पिएँ, ठंडी हो रही है।'

और संयोग था अथवा षड्यंत्र, ठीक उसी समय उसका मोबाइल बजने लगा। उस तरफ संपादक था, 'बास, तेरे को अभी अपना कॉलम कुछ दिन रोकना पड़ेगा। बात ये हैं...'

रतन कुमार ने बात बीच में काट दी थी, 'आप परेशान न हों, मुझे बुरा नहीं लग रहा है।' उसने अब फोन काट दिया।

उसे कॉलम बंद होने का अफसोस नहीं था, महज इतना ही था कि बाबा अखबार में उसकी फोटो देख कर बहुत खुश होते थे, अब नहीं होंगे। मगर उसे इस बात की

उलझन अवश्य थी कि संपादक जो अभी पिछले हफ्ते तक 'अप्रिय' की इतनी तारीफ करता था और कहता था कि इसे सप्ताह में दो बार क्यूँ न छापा जाय, यकायक बंद करने का फरमान क्यों जारी करने लगा।

जनादेश के दूसरे संपर्कों के जरिए पूछताछ में एक नहीं अनेक वजहें सामने आ रही थीं जिससे किसी एक नतीजे पर पहुँचाना कठिन हो गया था। एक सूत्र का कथन था कि संपादक के पास मुख्यमंत्री सचिवालय से कॉलम रोकने की कोशिश पहले से हो रही थी किंतु संपादक अड़ा हुआ था। तब मुख्यमंत्री सचिवालय ने उस भूखंड का आवंटन तकनीकी कारणों से रद्द करने की धमकी दी जिसे बहुत कम कीमत में संपादक ने मुख्यमंत्री के सौजन्य से ग्रेटर नोएडा में हासिल किया था। साथ ही आठ एयरकंडीनर आठ ब्लोवर, तीन गीजर वाला उसका घर था जिसका बिजली भुगतान बकाया न चुकाने के कारण रुपए सात लाख पहुँच गया था। संपादक ने उसे माफ करने की अर्जी लगा रखी थी लेकिन उसके पास कनेक्शन काट देने की नोटिस भेज दी गई। तब उसने अपने प्रिय स्तंभ 'अप्रिय' को बंद करने का निर्णय भावभीगे मन से किया।

लेकिन अखबार का समाचार संपादक इसे खारिज करते हुए यह बता रहा था : 'सर्कुलेशन वाले 'अप्रिय' को प्रसंद करते थे लेकिन मार्केटिंग ने टँगड़ी मार दी। उनकी रिपोर्ट थी कि विज्ञापनदाता कॉलम पर नाक भौं सिकोड़ते हैं। उन्होंने इसे तत्काल रोकने की पैरवी की थी।'

जबकि फीचर एडीटर ने गपशप में अपनी एक प्रिय लेखिका को बताया और लेखिका ने अपने देवर को बताया। देवर जो रतन कुमार का विद्यार्थी था, रतन कुमार से बोला, 'सर, आपका कॉलम क्यों बंद हुआ?'

'क्यों?'

'क्योंकि वह एडीटर की वाइफ को पंसद नहीं था। हर हफ्ता वह बोलती थी कि इसमें तो फालतू की बात रहती है।'

बाद में पता चला कि एडीटर की वाइफ के पिता का नाम डी.पी.एस. (दद्दा प्रसाद सिंह) था और बड़े भाई का एल.पी.एस. (लालता प्रसाद सिंह) था। वाइफ उसी रोज से रतन से खार खाए हुई थी जब उसने शब्दों के संक्षिप्त रूप पर कलम चलाई थी।

खैर 'अप्रिय' अध्याय समाप्त हुआ - रतन कुमार ने संतोष कर लिया और सुनिधि से यह कह कर खुशी जाहिर की, 'चलो अब न मुझे बोलना पड़ेगा न तुम्हें लिखना। मेरी आँखों को भी आराम मिलेगा।'

उसने अपना मोबाइल सुनिधि को दिया, 'मैसेज बाक्स में चौदह नंबर पर देखो।'

सुनिधि ने रोमन अक्षरों को जोड़ जोड़ कर पढ़ना शुरू किया: 'खेद है कि हम आपका स्तंभ 'अप्रिय' कुछ अपरिहार्य कारणों से आगे प्रकाशित करने में असमर्थ हैं।'

'वह खुद मुझे बोल चुका था, फिर यह मैसेज क्यों?' रतन कुमार ने स्वगत कथन किया और जबाव में भी उसने स्वगत कथन किया, 'इस मैसेज को उसने कई जरूरी जगहों पर फारवर्ड करके भूल सुधार को सबूत पेश किया होगा।'

सुनिधि मोबाइल के संदेश पर नजर गड़ाए हुए थी कि हथेली में झनझनाहट हुई और वह फोन बजने लगा। अब उसने पुनः स्क्रीन देखा और चौंक गई - स्क्रीन पर न कोई नाम था न नंबर। उस पर टिमटिमा रहा था - UNKNOWN NUMBER।

'कैसी अजीब काल है? लिखा है अननोन नंबर।'

रतन कुमार ने फोन पर कहा, 'हैलो।'

'इस वक्त मेहबूबा के फ्लैट में बैठे मजे कर रहे हो।' उधर से कहा गया।

'सही कह रहे हैं आप।' रतन कुमार ने पूछा, 'आपको कैसे मालूम?'

'मुझे सब मालूम है। मैं बता सकता हूँ कि तुम इस वक्त क्रीम रंग की कमीज और नीले रंग की पतलून पहने हुए हो।'

'आप कौन हो?'

'मैं एक कोड हूँ। मेरी पहिचान को डिकोड करो तुम। क्या लिखते हो तुम - हाँ मैं एक कूट संरचना हूँ।' ठहाका सुनाने के बाद फोन काट दिया गया। उसने बगैर कोई वक्त गँवाए सुनिधि से कहा, 'काल लॉग से इसके नंबर पर फोन मिलाओ।' लेकिन काल लॉग में 'अननोन नंबर' गायब था।

'कौन था?' सुनिधि ने मोबाइल उसे लौटाते हुए सवाल किया।

'पता नहीं, कह रहा था -'मैं कूट संरचना हूँ। वह एक कुटिल संरचना है।'

'पर नंबर की जगह 'अननोन'।'

'इस तरह के नंबर अमूमन केंद्र सरकार के गुप्तचरों के पास रहते हैं लेकिन आजकल कुछ और लोगों के पास भी यह सुविधा है।' उससे आगे नहीं बोला गया। लग रहा था, वह निढाल हो चुका है। उसके मस्तक पर पसीने के कण थे। जैसे किसी ने वहाँ स्प्रे कर दिया हो।

यह प्रकरण यहीं खत्म नहीं हुआ था। यह इब्दिता था। कुछ अंतराल के बाद पुनः 'अननोन' था पर इस बार आवाज दूसरी थी। उसने जो कुछ कहा उससे रतन कुमार हतप्रभ और खौफजदा हो गया था। अजीब बात थी कि इसे रतन कुमार के बारे में बेपनाह जानकारियाँ थीं। मालूम था, आँखों की बीमारी पैदाइशी थी जिसे ले कर रतन कुमार ने प्रतापगढ़ में कुणाल नामक अपने एक लँगोटिया यार से बारह साल की अवस्था में झूठ बोला था कि एक तेज बुखार की चपेट में उसकी आँखें खराब हुई थीं। उसके परिवार की हादसे में मौत का विवरण, उसके खानदान का समूचा सजरा, सारी परीक्षाओं में प्राप्त उसके विषयवार अंक, उसके प्रिय स्वाद, कपड़े और जगहें उसे ज्ञात थे। वह यहाँ तक जानता था कि वह कौन सी दवाएँ खाता था और कौन से व्यायाम करता था। उसने यह भी बताया, 'तुमने सुनिधि कल के साथ फिल्म देखी थी और रेस्टोरेंट में डिनर किया था। डिनर का बिल दो सौ अस्सी रुपए था जिसे कुमारी सुनिधि ने चुकाया था।' इसके बाद 'कुमारी' पर जोर दे कर उसने डकार ली थी जो वास्तव में अट्टहास था। इस पर रतन कुमार भड़क गया था, 'कौन है बे तू सामने आ।'

'आऊँगा सामने तुम्हें मार डालने के लिए। मुझे अपनी नई रिवाल्वर का इंतजार है, मैं तुम्हें उसी से मारूँगा।'

रतन कुमार कुछ बोला नहीं, साँस लेता रहा।

'क्या सोच रहे हो? यही न कि 'मेरी मौत रिवाल्वर से हो ही नहीं सकती, मैं एक्सीडेंट से मरूँगा।' उसने हूबहू रतन कुमार के बोलने की शैली की नकल उतारी थी। और रतन कुमार के हाथ से मोबाइल गिर पड़ा था। वह ढह गया था, 'मेरे साथ क्या हो रहा है?' वह परेशान हो गया था लेकिन शाम तक उसने अपने को सँभाल लिया और कल क्लास में देनेवाले अपने लेक्चर की तैयारी करने लगा था। मगर जब देर रात सोने के लिए उसने बिजली गुल की और बिस्तर पर पहुँचा तो वह डर पुन: प्रकट हुआ। जैसे वह डर के झूले पर सवार था जो बहुत तेज घूम रहा था। वह डर का झूला इतना तेज घूमता था कि पलक झपकते उसके अनेक चक्कर पूरे हो जाते थे। चक्रवात सा चल

रहा था। उसकी आँखों का दर्द कल के लेक्चर की तैयारी से अथवा डर के झूले के घूर्णन से बढ़ गया था। अंधकार की समस्या वैसी ही थी, अँधेरे में अंधकार और घना हो चुका था।

उसे अविश्वसनीय लग रहा था कि कोई उसका इतना राई रत्ती जान सकता है। अर्धरात्रि तक उसे लगने लगा : 'वह मैं ही तो नहीं जो अपने को फोन कर रहा हूँ। मैं अपने सामने अपने राज खोल रहा हूँ और मैंने ही डकार की तरह अट्टहास किया था।' उसे महसूस हो रहा था : 'रतन कुमार अपने शरीर से बाहर चला गया है जो नई नई आवाजों में फोन करके मुझे त्रस्त कर रहा है। रतन कुमार ही मेरी मौत का फरमान सुना रहा था और मेरे भेद बताने की शेखी बघार रहा था। क्या सचमुच मेरी हत्या की जाएगी और मैं ही हत्यारा रहूँगा।' उसने तर्क किया यह एक असंभव स्थिति है, ऐसा भला कहीं होता है! लेकिन जो घटित हो रहा था वह भी तो असंभव था। आखिर कोई दूसरा किसी की इतनी बातें कैसे जान सकता है। उसने इस पर भी विचार किया कि संभवतः यह एक मतिभ्रम है, जिसका रिश्ता उसकी आँखों के दर्द और अँधेरे की समस्या से है।

उसने खुद से कहा, 'मुमकिन है, मेरी आँखों की रोशनी कम हो गई हो और दिमाग अति सक्रिय हो कर तरह तरह के करतब दिखा रहा है।' लेकिन उसको इन सब पर विश्वास नहीं हो रहा था क्योंकि उसे पक्का यकीन था कि वह किसी प्रकार के मनोरोग की गिरफ्त में कतई नहीं है। इसके समर्थन में उसके पास दलील थी कि सुनिधि तब पास में थी जब पहली बार अननोन फोन आया था, बल्कि उस समय मोबाइल सुनिधि के ही हाथ में था। इस दलील के विरुद्ध दलील यह थी : 'ठीक है कि सुनिधि बगल में थी लेकिन उसने फोन की वार्ता सुनी नहीं थी। इसलिए हो सकता है कि अननोन की लिखत ने मुझे डरा दिया हो और वार्ता की सारी बातें यथार्थ नहीं, मेरे मस्तिष्क की गढ़ंत हों। इस विवाद का निराकरण करने का एक ही तरीका था, जिसे उसने आजमाया...। अगली बार जब उसके मोबाइल पर **UNKNOWN** उभरा तो उसने बात करने में देर लगाई क्योंकि इस बार उसे भय नहीं क्रोध आ गया था। वह फोन पर कोई भद्दी सी बात, बहुत घटिया गाली देना चाहता था जिसे करीब बीस साल हुआ था उसने उच्चारित नहीं किया था। किसी तरह उसने अपने पर काबू पाया और कहा, 'देखिए मैं अभी व्यस्त हूँ आप शाम 6 बजे के बाद फोन करें।' उसने फोन काट कर सुनिधि को मिलाया, 'सुनिधि तुम हर हाल में अपने फ्लैट पर छः के पहले पहुँचो, बहुत जरूरी है।'

6.33 पर घंटी बजी। उसने फोन उठा करके स्पीकर चालू कर दिया। सुनिधि भी सुन रही थी...

'सुनिधि छह के पहले पहुँच गई न। क्या बोले थे उससे तुम - बहुत जरूरी है - यही न।' इस बार कोई फर्क आवाज थी।

'आपने फोन क्यों किया है?'

'पूछने के लिए।'

'पूछिए।'

'दीपावली की रात सात दीये जला कर सुनिधि के साथ सोते हो, इस बार होली की रात में क्या होगा?'

'पूछ लिया न! अब फोन काटूँ?'

'नहीं कुछ बताना भी है।'

'क्या?'

'तुमने अपने ऊपर हमले का जो हल्ला मचाया था, कुछ नहीं हुआ। फाइनल रिपोर्ट लगनेवाली है।'

'मैं जानता था, यही होगा।'

'फिर इतना तूफान क्यों मचाया था? क्या उखाड़ लिया?'

'तो मेरा ही क्या बिगड़ गया। ज्यादा से ज्यादा मेरा कॉलम बंद हो गया, जिसका मुझे कोई अफसोस नहीं हैं।'

'इतनी जल्दबाजी में क्यों हो, बदला बड़े धीरज से लिया जाता है।'

'क्या कर लेगा कोई मेरा?'

'मारे जा सकते हो या जेल भी जा सकते हो।'

'किस गुनाह में?'

'गुनाह से सजा नहीं मिलती है, सजा गुनाह के सुबूत से मिलती है। सुबूत के कारण ही अनेक गुनहगार आजाद रहे हैं और लाखों बेगुनाह जेल के शिकंजों के पीछे हैं।'

'क्या सबूत है मेरे खिलाफ?'

'सबूत होना खास बात नहीं है। खास है - सबूत इकट्ठा करना और उसे क्रम देना, - एक थीम प्रदान करना।'

इस पूरे संवाद को सुनिधि ने सुना था और कहा था, 'मामला गंभीर होता जा रहा है। हमें पुलिस में रिपोर्ट करनी चाहिए। वह सर्विलांस के जरिए या चाहे जैसे, फोन करनेवालों का पता करे और उनको पकड़े।' वह उसी समय रतन कुमार के साथ कोतवाली गई थी। कोतवाल वहाँ मौजूद था।

कोतवाल से उसकी वार्ता इस मोड़ पर समाप्त हुई थी कि रतन कुमार आए दिन कोई न कोई कहानी ले कर आता है और उस कहानी में कोई सच्चाई नहीं होती। कोतवाल ने कहा, 'रतन कुमार जी मैं साहित्यिक पत्रिकाओं को मौका निकाल कर पढ़ता हूँ और यह कह सकता हूँ कि कहानियों को यथार्थवादी होना चाहिए। आपकी कहानी यथार्थवादी नहीं है।'

'मैं कहानी ले कर नहीं आया हूँ इस वक्त मेरे पास सच्चाई है। जानते हैं कोतवाल साहब, सच्चाई कभी भी निपट यथार्थवादी नहीं होती है।'

'लेकिन आपकी सच्चाई पर किसी को भरोसा क्यों नहीं होता है?'

'जिन्हें सच्चाई पर भरोसा नहीं होता, वे सच्चाई की समझ नहीं रखते है।'

'आप कुछ कार्रवाई करें सर!' सुनिधि ने हस्तक्षेप किया।

'करता हूँ कुछ कार्रवाई।' कोतवाल भद्दे तरीके से बोला था।

उसकी यातना का सिलसिला अभी थमने वाला नहीं था। एक रात उसे बहुत सारे कुत्तों के रोने की और भौंकने की आवाज सुनाई देने लगी। थोड़ी देर बाद लगा कि वे कुत्ते उसके घर के बहुत पास उसके दरवाजे पर मुँह लगा कर रो रहे हैं। रुलाई और भौंकने की ये बड़ी तेज, मनहूस और नजदीकी आवाजें थीं। लग रहा था जैसे वे कुत्ते अब उसके घर से बिल्कुल सट कर रो रहे थे। जब बरदाश्त नहीं हुआ तो वह किवाड़ खोल कर बाहर निकला। उसके हाथ में डंडा था जो कुत्तों को मार कर भगाने के लिए कम, उनसे बचाव के लिए अधिक था लेकिन डंडे का उपयोग नहीं हुआ क्योंकि बाहर सन्नाटा था।

उसने देखा बाहर निरभ्र शांति थी। वहाँ न आवाजें थीं न कुत्ते। गोया कुत्ते नहीं कोई टेप शोर मचा रहा था जिसमें कुत्तों का रुदन और भौंकना रिकार्ड था। ऐसा लगातार होता रहा और उस दिन खत्म हुआ जब देर रात वह लौटा था। उसने देखा, उसके घर के सामने तमाम विदेशी नस्ल के खूँखार, लहीम-शहीम अनेक रंगों और आकारों के कुत्ते मँडरा रहे है।

उसे लगा निश्चय ही वे उसी के लिए घात लगाए हैं। वह उलटे कदम वापस चला गया था। रात उसने रेलवे स्टेशन पर आनेवाली गाड़ियों की स्थिति की उद्घोषणा सुनते हुये बिताई थी। इसके बाद सब सामान्य रहा था। लेकिन निश्चिंत होने के बजाय वह घनघोर रूप से चिंतित हो गया था। उसे लग रहा था, यह तूफान के पहले की शांति है और बहुत ज्यादा उसके साथ बुरा होनेवाला है। वह सहमा और घबराया हुआ दिखने लगा। कुल मिला कर वह बेहद बुरे दौर से से गुजर रहा था। बाबा से फोन पर बात करते हुए उसका मन भर आता था, रुलाई भी आने लगती थी लेकिन वह सँभालने का यत्न करता था और सफलतापूर्वक रोना दबा लेता था। इस कसरत में उसकी बोलने की शैली बदल जाती थी। तब बाबा उधर से हेलो हेलो करते और पूछते, 'तू रतन ही बोल रहा है न!'

वह इतना परेशान हो गया था कि पिछली खराब मुलाकात की याद को भुला कर पुनः वह शहर कोतवाल से मिलने चला गया था। जब पहली बार चाय पीने और उसके कॉलम की तारीफ करने कोतवाल उसके घर आया था तो एक खुशमिजाज आदमी लग रहा था लेकिन दफ्तर में वह समझदार और मानवीय नहीं लगा था। रतन कुमार ने सोचा कि हो सकता है, दफ्तर में कोतवाल खराब आदमी हो जाता है और घर पर बेहतर। अतः वह सुबह उसके बंगले पर चला गया था जहाँ वह अपनी सुंदर पत्नी के साथ लॉन में चाय पी रहा था। संयोग से उसकी पत्नी भी हिंदी की पत्रिकाएँ पढ़ती थी और साहित्यिक पत्रिकाओं में विशेष रूप से कहानियों की पाठिका थी।

रतन कुमार को कोतवाल ने वहीं बुला लिया और चाय भी पेश की। इससे रतन कुमार को यकीन हो गया कि कोतवाल का दिमाग आफिस में खराब रहता है। अनुकूल स्थितियाँ देख कर उसने कोतवाल से अपना दुखड़ा रोया।

'बिस्किट भी लीजिए।' कोतवाल ने दुखड़ा सुन कर प्यार जताया, 'आपको किसका खौफ है? नक्सलवाद से पूरा हिंदुस्तान डरता है तो किसकी हिम्मत जो आपसे पंगा ले?' कोतवाल स्वयं बिस्किट प्लेट से उठा कर कुतरने लगा।

कोतवाल की सुंदर बीवी ने संदर्भ को विस्तार दिया : 'साहित्य समाज का दर्पण होता है। माफ कीजिएगा जनाब ये नक्सल भी देश को भरमा रहे हैं। वे गरीबी, भूख, अत्याचार और राज्य के दमन को काफी बढ़ाचढ़ा कर बताते हैं। मैं कहती हूँ कि ये सब चीजें हमारे देश में हैं ही नहीं। इसीलिए आजकल की कहानियों में इनकी चर्चा बिल्कुल नहीं होती है। मैं कहती हूँ कि वे फर्स्ट क्लास की कहानियाँ इसीलिए हैं कि वे इन झूठी और फालतू बकवासों से आजाद हैं।'

रतन कुमार पछतावे से भर उठा। उसे इस बात का तीव्र अहसास हो रहा था कि अपनी सुबह तबाह करने का वह स्वयं जिम्मेदार है।

उसने जनादेश के संपादक से भी मुलाकात की थी। उसकी बातें सुन कर वह बड़े जोश में आ गया था, 'अपुन है न!' उसने रतन कुमार से कहा, 'तुम निश्चिंत रहो। अगर तुम्हारे साथ कुछ हुआ तो हम उनकी...।'

'मगर मैं चाहता हूँ कि मैं बच जाऊँ, मैं सकून से रहूँ। आप कुछ कर सकते हैं?'

'डरते क्यों हो बादशाओ।' संपादक ने गाया, 'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है, देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में हैं।'

अंततः वह हर तरफ से नाउम्मीद हो गया था और अपने आँखों के दर्द, अंधकार की समस्या और अनहोनी की आशंका के घमासान में निहत्था हो गया था। इस विकल्प को वह पहले ही खारिज कर चुका था कि इस घर को छोड़ कर दूसरा कोई मकान ले कर उसमें चला जाय। उसने जान लिया था कि जो लोग उसकी हर सूचना हर सच्चाई हर कदम से वाकिफ हैं उनके लिए उसका नया ठिकाना ढूँढ़ना बेहद सरल काम होगा। बल्कि वह ऐसा फंदा तैयार करेंगे जिससे वह उसी नए मकान में जाएगा जहाँ पहले से उसे बरबाद करने की तैयारी वे कर चुके होंगे। वह सुनिधि के फ्लैट में कुछ दिन रहने के ख्याल को इसलिए रद्द कर चुका था कि इसके लिए वह राजी नहीं होगी। यदि उसकी विपत्ति से पिघल कर हो गई तो भी कुछ हासिल नहीं होगा सिवा सुनिधि को भी अपने नर्क में गर्क कर देने के या सुनिधि के जीवन को नर्क बना देने के। यही बाबा के मामले में था। पहले उसने सोचा, बाबा हमेशा मुश्किलों से बचाते रहे हैं। उन्होंने असंख्य दुखों, घावों, अपशकुनों, अभावों से उसकी हिफाजत की है। वह बारिश में छाता उसके सिर पर कर देते थे और खुद छाते की मूठ पकड़े बाहर भीगते रहते थे। गर्मी में उनके हिस्से का शरबत, लस्सी, वगैरह भी उसे मिल जाता था और जाड़े में अपने स्वेटर का ऊन खोल कर पोते के लिए स्वेटर उन्होंने खुद बुना था। लोग हँसी उड़ाते, बाबा औरतों वाला काम कर रहे हैं पर बाबा मनोयोग से सलाई ऊन में फँसा कर

ऊपर नीचे करते रहते थे। लेकिन इस बार शत्रु ऋतुओं से ज्यादा ताकतवर और खतरनाक थे। बाबा को भी मुसीबत में डालने से क्या फायदा - उसने सोचा था और आखिर कर अकेला हो गया था।

अब उसके पास यही रास्ता बचा था कि इंतजार करे। वह बाट जोहने लगा था हादसे का। उसे नहीं मालूम था कि हादसा सोमवार को, मंगल को, शुक्र, इतवार किस रोज होगा? वे दिन या रात, कब आएँगे या कितने जन रहेंगे उसे बिल्कुल नहीं पता था। उसको यह भी साफ नहीं था कि उसे प्रताड़ित किया जाएगा या मार दिया जाएगा? वह किसी बात से वाकिफ नहीं था लेकिन इस बात को ले कर उसे शक नहीं था कि वह बख्शा नहीं जाएगा। इस दहशत भरी जिंदगी में उसके पास बचाव का कोई तरीका था, कवच था तो महज इतना कि यह सारा कुछ जो हो रहा है उसकी कोई यथार्थ सत्ता न हो। यह एक दुःस्वप्न हो जो नींद खुलने पर खत्म हो जाएगा। उसका डर और उसकी समस्याएँ वास्तविक न हो कर उसकी चेतना का विकार हों, इसलिए वह मानसिक उत्पीड़न के बावजूद मूलभूत रूप से बचा रहेगा। इसकी भयंकर परिणति यही हो सकती थी कि सत्य के स्तर पर वह सुरक्षित और धरती पर बना रहेगा किंतु अपनी चेतना और अनुभूति के स्तर पर लहूलुहान या मृत हो जाएगा। इसमें तसल्ली की बात इतनी थी कि जैसा भी हो वह जीवित रहेगा। वह अपने लिए मिट जाएगा पर बाबा और सुनिधि के लिए मौजूद होगा।

लेकिन संकट के वास्तविक नहीं आभासी होने की आकांक्षा दीर्घायु नहीं हो पाती थी। जीवन दोहत्थड़ मार कर उसे झकझोर देता और हकीकत के धरातल पर ला कर पछाड़ देता था। तब वह पुनः अथाह बैचेनी के साथ बुरा घटित होने की प्रतीक्षा प्रारंभ कर देता था।

4 जनवरी 2011 मंगलवार के दिन वास्तविकता और भ्रम की टक्कर ज्यादा पेचीदा, विस्तृत और विवादास्पद हो गई। उस दिन रतन कुमार ने आरोप लगाया कि उस पर हमला किया गया था। उसने अपने जख्म दिखाए जो घुटनों, कुहनियों और माथे पर अधिक चटक थे। उसने जो बयान किया वो संक्षेप में यह था : सुबह के 5.30 का समय था तभी उसके घर की कालबेल बजी थी। यह वक्त अखबार वाले के अखबार फेंक जाने का होता था। अखबार फेंक कर वह घंटी बजा देता था। हमलावरों की ताकत असीम थी, उन्हें रतन कुमार के हाकर की इस आदत के बारे में भी पता था। इसलिए सुबह 5.30 पर घंटी हाकर ने नहीं उन्होंने बजाई थी। रतन कुमार ने दरवाजा खोला किंतु उसकी चौखट पर अखबार नहीं कुछ लोग थे। जाड़े में सुबह इस वक्त पर अँधेरा ही रहता है और रतन कुमार को वैसे भी ठीकठाक कहाँ दिखायी देता था। उसने उन

लोगों को पहचानने से इनकार किया। इसकी उन्हें कोई परवाह नहीं थी, वे धड़धड़ाते हुए भीतर आ गए।

कमरे में जीरो पावर का एक बल्ब जल रहा था। इतनी कम रोशनी में आगंतुकों को ठीक से देख पाना रतन कुमार के लिए मुमकिन नहीं था। उसने रोशनी करने के लिए स्विच बोर्ड की तरफ हाथ बढ़ाया तभी एक ने उसकी कोहनी पर जोर से मारा था। इसी घाव को बाद में रतन कुमार ने सार्वजनिक किया था। किस चीज से प्रहार किया गया था यह वह बता नहीं पाया। क्योंकि जीरो पावर के अँधेरे में उसे नहीं दिखा, कि हाकी, छड़, कुंदा - किस चीज से मारा गया था।

'मुझसे आपको क्या शिकायत है, आप किस बात का गुस्सा निकाल रहे हैं? मेरा कसूर क्या है?' उसने सवाल किया था।

उसका कसूर यह बताया गया कि अखबार में ऊटपटाँग की बातें लिख कर उसने अनेक प्रतिष्ठित लोगों की भावनाओं को आहत किया है और अनेक पवित्र एवं महान संस्थाओं तथा पार्टियों की छवि मिट्टी में मिलाने का गुनाह किया है।

'पर अब मेरा कॉलम बंद हो गया है।' वह मिमियाया

वे चारों हँसे, एक बोला, 'बंद नहीं हो गया हमने उसे बंद कराया। लेकिन तुम अपराध तो कर चुके हो इसलिए सजा दी जाएगी तुमको**?**'

रतन कुमार का कहना था कि उनकी इस बात पर उसका मिजाज गर्म हो गया था, उसने चीखते हुए कहा था, 'आप लोग सजा देंगे, क्यों? आप न्यायाधीश हैं, यमराज हैं या जल्लाद?' यह सुन कर वे लोग हँसने लगे थे। हँसते हुए ही उनमें से एक ने उसके माथे पर किसी चीज को दे फेंका था। वह क्या थी, इसे भी वह देख नहीं पाया था। बस जब माथे पर लगी थी, उसके स्पर्श और आघात के एहसास के आधार पर कह सकता था कि वह लोहे की कोई गोल चीज थी। कुल मिला कर यह निश्चित हो गया था कि कमरे में इतना प्रकाश था कि उन चारों को आराम से दिखाई दे रहा था कि वे रतन कुमार के हाथ और माथे को देख कर निशाना साध सकें और रतन कुमार को बमुश्किल इतना भी नहीं दिख रहा था कि वह जान सके कि उस पर किस आयुध से प्रहार किया गया है।

जब इस प्रकरण को ले कर बहसबाजी शुरू हुई तो उपरोक्त बिंदु सबसे प्रमुख मुद्दे के रूप में उभर कर सामने आया। रतन कुमार ने आरोप लगाया था कि चार लोगों ने

उसके घर में घुस कर उसे मारा पीटा था और उसकी दोस्त सुनिधि के साथ बलात्कार की धमकी दी थी। उन्होंने यह भी धमकाया था कि कि किसी दिन एक ही समय पर प्रतापगढ़ में उसके बाबा और यहाँ राजधानी में खुद वह चार पहिया वाहन से रौंदे जाएँगे। वे इस पर ठहाका लगा कर हँसे थे कि अलग अलग जगहों पर अलग अलग लोग एक ही समय पर एक ही तरीके से मारे जाएँगे। अंत में उसने यह कह कर सबको चौंका दिया था कि वह चारों को पहचान गया है।

उसने चारों की जो शिनाख्त की थी वह अचंभे नहीं महाअचंभे में डाल देने वाली थी। उसने कहा, उनमें एक मुख्य सचिव स्वयं था और शेष तीन थे - शहर कोतवाल, प्रमुख सचिव गृह और मुख्यमंत्री का एक विश्वसनीय सलाहकार। रतन कुमार का कथन था कि ये चारों उस पर हमला करके बड़े खुश थे और जश्न मना रहे थे। उसी उत्सवी वातावरण में उनमें से एक ने कहा था कि रतन कुमार जैसी चुहिया का टेटुआ दबाने का काम उनके राज्य का कोई बहुत मामूली बिलार भी कर सकता था लेकिन वे खुद इसलिए आए कि इस तरह जो मजा मिल रहा है वह दुर्लभ है। अपने शिकार को अपने दाँतों से चीथ कर खाना कुछ और ही लुत्फ देता है। दूसरी बात, खुद आने में भी कोई खतरा नहीं है क्योंकि अपनी आँखों की कम ज्योति के कारण रतन कुमार उन्हें ठीक से देख नहीं सकेगा। इस पर कोतवाल ने एक जुमला कसा था - 'स्वाद भी सुरक्षा भी।' ध्यान देने की बात यह है कि यह सब कहते हुए वे अपने पद और परिचय नहीं बता रहे थे।

बस हँस रहे थे और रतन कुमार के सामने चुनौती फेंक रहे थे - 'सूरदास, हमें पहचानो हम हैं कौन...।' रतन कुमार ने अपने ऊपर हमले के संदर्भ में बोलते हुए कहा था, 'मैं पक्के तौर पर नहीं कह सकता, लेकिन जिस प्रकार ये चार ओहदेदार लोग मुझ पर हमला करने आए, उससे यह लगता है कि मुझ पर हमला राज्य की इच्छा से हुआ है। अब राज्य मेरे जैसे आदमी से क्यों इतना डरा है कि हमला करने की नौबत आ जाए, यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है। हाँ बीच बीच में उनकी होने वाली बातों से यह अनुमान लगाया ही जा सकता है कि मुझ पर राज्य के गुस्से कारण जनादेश में छपनेवाला मेरा स्तंभ 'अप्रिय' था। वे बीच-बीच में व्यंग्य कर रहे थे कि 'बहुत चला था कूट रचना और शाट फार्म के विरोध का झंडा उठाने... देख उस झंडे का डंडा कहाँ घुस गया। पीछे हाथ लगा कर देख।' मुख्य सचिव ने टाई लगा रखी थी। उसने टाई को ढीला करते हुए पैर फैला कर मेरे मुँह पर रखा था।'

रतन कुमार को इस बार पहले की भाँति समर्थन नहीं प्राप्त हो रहा था। बल्कि यूँ कहा जाए कि कोई उसकी बात को गंभीरतापूर्वक नहीं ले रहा था। उसके आरोप इसी पर

खारिज हो जाते थे कि प्रदेश के चार इतने बड़े अधिकारी खुद उसके घर जा कर हमला करेंगे, यह बात किसी को विश्वासयोग्य नहीं लगती थी। लोग यह स्वीकार करते थे कि सत्ता अपने से टकराने वालों को गैरकानूनी दंड देने में प्रायः संकोच नहीं करती है जबकि वह चाहे तो वैध तरीके से ही विरोधी की जिंदगी बरबाद कर सकती है। इसके बावजूद रतन कुमार का वर्णन इतना ड्रामाई, कोरी कल्पना और मसाला लगता था कि वह लोगों के गले नहीं उतरता था।

आखिर मौज लेने के लिए इतने बड़े हुक्मरान इतना बड़ा जोखिम कैसे उठा सकते है। संदेह की दूसरी वजह यह थी कि रतन कुमार आला हाकिमों के गुस्से की वजह अपने स्तंभ को बता रहा था। पहली बात कि वह स्तंभ बंद हो चुका था और दूसरी, उस स्तंभ में इन अधिकारियों के ख़िलाफ एक बार भी कटूक्ति नहीं कही गई थी। ये चारों अपने नाम भी पूरे पूरे लिखते थे न कि शार्ट फार्म में, जिसको ले कर रतन कुमार ने न जाने कैसी बहकी बहकी बातें की थीं। फिर आखिर इन चारों को क्या पड़ी थी कि उसकी खाल खींचने उसके घर चले गए। जाहिर है यह सब रतन कुमार का दिमागी फितूर है या चर्चित होने के लिए की गई एक बेतुकी नौटंकी। खुद विश्वविद्यालय के कई अध्यापकों का मानना था कि कॉलम बंद होने से रतन कुमार बौखला गया था और यह सब अन्य कुछ नहीं अपने को चर्चा के केंद्र में ले आने का एक घृणित हथकंडा है। जबकि उच्च न्यायालय के दो न्यायमूर्ति लंच में बातचीत के बीच इस परिणाम पर पहुँचे : ये ब्लैकमेलिंग का केस है। दरअसल ये लौंडा सरकार से कोई बड़ी चीज हथियाना चाहता है।

इस वाकए के रतन कुमार के वर्णन में जो सबसे बड़ी खामी, सबसे गहरा अंतर्विरोध था वह था - देखना। रतन कुमार को जानने वालों को यह ज्ञात था कि उसको ठीक से दिखता नहीं है और अँधेरे अथवा जीरो पॉवर की हल्की लाइट में करीब करीब बिल्कुल ही नहीं देख सकता है। रतन कुमार स्वयं इस बात को स्वीकार करता था। यह उसके बयान से भी सिद्ध होता था। क्योंकि उसने बताया था कि 5:30 पर अँधेरा होता है और वह बाहर खड़े इन लोगों को नहीं पहचान सका था। कमरे में लाइटें जलाने के लिए उसने स्विच बोर्ड की तरफ हाथ बढ़ाया तो प्रहार हुआ। और उसका हाथ नीचे झूल गया। अर्थात रोशनी की दशा वैसी की वैसी रही। इतनी कम कि वह देख नहीं सका था, उसके हाथ पर किस चीज से प्रहार किया गया। रतन कुमार ने हमेशा यही कहा कि कमरे में और उसकी आँखों में रोशनी कम होने के कारण वह आगंतुकों को पहचान नहीं पा रहा था। तब फिर आखिर कौन सा चमत्कार हुआ कि उसने देख लिया : ये हैं : मुख्य सचिव, प्रमुख सचिव गृह, मुख्यमंत्री का मुख्य सलाहकार और शहर कोतवाल।

'हाँ, चमत्कार हुआ।' रतन कुमार का जवाब था : 'मेरे साथ कभी-कभी चमत्कार होता है। यह सच है कि मेरी आँखों में देखने की सामर्थ्य बहुत कम है लेकिन मेरे साथ ऐसा कुछ बार हुआ है कि जब मुझमें कोई भावना बहुत ज्यादा होती है - फट पड़ने की सीमा पर - एकदम बेकाबू - तो मुझे अपरंपार दिखने लगता है। बहुत ज्यादा। तब मैं सूई में धागा तक डाल सकता हूँ और किसी अँधेरे कोने में पड़ा सरसों का दाना ढूँढ़ कर उठा सकता हूँ। और उस रोज जब ये चारों मुझे पीट कर, परेशान कर, बेइज्जत करके जाने लगे थे तब मेरे अंदर घृणा की भावना भयंकर रूप से उमड़ी थी। इतनी घृणा जीवन में कभी नहीं हुई थी। वह घृणा बादलों को चीर देनेवाली थी। तभी मुझे सभी कुछ तेज रोशनी में दिखने लगा था - ये चारों भी दिखे थे। मेरी याददाश्त भी अच्छी है जो हर वक्त अच्छी रहती है। मैं बता सकता हूँ कि इन लोगों के कपड़े कैसे थे उस रोज और पैरों के जूते किस तरह के थे। मैं इनके बालों की सफेदी और गंज, चेहरे, हथेलियों के कुछ चिह्नों को बता सकता हूँ।'

कोई इस बात पर यकीन करने के लिए तैयार नहीं था सिवा सुनिधि के। सुनिधि ने एक बार फैसला भी कर लिया था कि वह लाज शरम तज कर कहेगी कि, 'हाँ, इसके साथ ऐसा होता है। यह पिछली दीपावली पर रात में सात दीयों के मद्धिम उजाले में मेरे शरीर के तिलों को देख सका था।' लेकिन उसे ऐसा करने से रतन कुमार ने ही रोक दिया था। कहा था : 'इस पर लोग हँसेंगे, विश्वास नहीं करेंगे।'

जो रतन कुमार से सहानुभूति रखते थे उनको भी इस वृत्तांत पर एतबार नहीं था किंतु वे यह मानते थे कि रतन कुमार तिकड़मी और फर्जी इनसान नहीं है जो इस तरह के किस्से गढ़ कर शोहरत या कोई अन्य चीज हासिल करने की जुगत करेगा। इसलिए उन्हें यह मामला उसकी दिमागी हालत के ठीक न होने का लगता था। विचित्र बात थी, यही तर्क सत्ता के लोगों का भी था। उनका भी कहना था : इस शख्स को कोई मानसिक रोग है और इसके द्वारा 'अप्रिय' स्तंभ में लिखी बातें भी मनोरोग की ही उत्पत्ति थीं।

रतन कुमार को भी ऐसा महसूस हुआ : 'हो न हो यह भी मिथ्याभास हो। आखिर इसके पहले भी यथार्थ और मिथ्या के संशय मुझको हो चुके हैं। कहीं उसी का उग्र रूप - विस्फोटक मनोविकार तो नहीं है यह सब। क्या मोबाइल पर आए अननोन नंबरों की तरह ही उस पर हुए हमलों का कोई अस्तित्व ही नहीं है। यह पूरी दास्तान मेरे दिमाग में घटी और बुलबुले की तरह फूट कर विलीन हो गई। अब भी मेरी आँखों में दर्द रहता है और अँधेरा। क्या इन दोनों दुःखों ने मिल कर एक झूठे महादुःख की गप्प तैयार की

जिसका लोगों पर असर महज एक चुटकुले की तरह हो रहा है।' उसने संतोष कर लिया : 'यह सब अघटित है। राज्य के प्रति मेरी घोर नफरत की काल्पनिक उड़ान है, बस।'

'लेकिन मेरे घाव। मेरे मत्थे का और मेरी कोहनी का घाव - वह तो है। पीठ के घावों के बारे में, खुद मुझे नहीं मालूम था, सुनिधि ने देखा और बताया था। तब अगर ये जख्म सच हैं फिर वह वाकया झूठ कैसे हो सकता है?' और इसी के बाद उसने पुनः पुराना रास्ता पकड़ लिया था। उसने अपने मन को शक्ति दी थी, सुनिधि को चूमा था और बाबा को फोन किया था, इसके बाद वह भूख हड़ताल पर बैठ गया था। उसकी माँग थी, अपराधियों पर कार्रवाई हो।

लेकिन अगले दिन वह अनशन स्थल से लापता हो गया था। कुछ प्रत्यक्षदर्शियों का कहना था कि वह भूख बरदाश्त नहीं कर सका था और भाग कर दो किमी की दूरी पर एक दुकान पर गोलगप्पे खा रहा था। कुछ ने आँखों देखा हाल की तरह बयान किया : उसे नींद में चलने का रोग है। वह साढ़े तीन बजे रात को उठ कर खड़ा हो गया और मुँदी हुई आँखों के बावजूद चलने लगा। वह काफी दूर चला गया था और वह लौट कर वापस नहीं आया था।

पता नहीं इन बातों में कौन सच थी कौन झूठ? या सभी सच थीं और सभी झूठ। लेकिन इतना अवश्य था कि रतन कुमार अगली सुबह अनशन स्थल से गायब था और फिर उसे किसी ने नहीं देखा था। विश्वविद्यालय में भी उसके बारे में कोई सूचना न थी। वह जहाँ रहता था उस मकान में ताला लटका था और पड़ोसी भी कुछ बता सकने में असमर्थ थे। सुनिधि उसके मोबाइल पर फोन करती रहती थी लेकिन वह हमेशा बंद रहता था। फिर भी उसने हार नहीं मानी थी, जब वक्त मिलता वह उसका नंबर मिला देती थी। नतीजा पूर्ववत : उसका मोबाइल बंद होता था। इस प्रकार जब आठ दिन बीत गए तो वह अपने फ्लैट में फफक कर रोने लगी थी।

कार में सुनिधि ने बाबा से प्रश्न किया 'अनशन स्थल से वह अचानक कहाँ चला गया था**?**'

'टीना बिटिया मैंने यह सवाल उससे किया था।' बाबा ने अपने कोट की भीतरी जेब से एक कागज निकाला, 'इसे पढ़ लो, उसी का लिखा हुआ है।'

सुनिधि ने कार किनारे कर के रोक दी और कागज को खोला। रतन की लिखावट थी। जिस रात वह अनशन स्थल से लापता हुआ था, उसका वर्णन करते हुए उसने लिखा था कि वह आधी रात का समय था। एक तो ठंड थी, दूसरे उसकी आँखों में दर्द था,

तीसरे उसे भूख महसूस हो रही थी, शायद इन्हीं वजहों से उसे नींद नहीं आ रही थी। हालाँकि वह सोने की कोशिश कर रहा था और आँखें मूँदे पड़ा था। तभी कुछ लोग एक ट्रक ले कर आए। उनके साथ तीन चार खतरनाक कुत्ते भी ट्रक से उतरे। उन लोगों ने उसे अनशन स्थल से उठा कर ट्रक में उछाल दिया फिर खुद आ गए। कुत्ते भी छलाँग मार कर ट्रक के भीतर थे। ट्रक धुर्र धुर्र करता हुआ पहले से ही स्टार्ट था, चल पड़ा। वह कर ही क्या सकता था। क्योंकि वे कई थे, अधिक ताकतवर थे और हथियारबंद थे। वे कुछ खाने लगे। खाने की कोई चीज उसे पेश की, कहा, 'लो तुम भी खा लो।' उसने मना किया, 'मैं कैसे खा सकता हूँ, मैं भूख हड़ताल पर हूँ।'

'भूख हड़ताल पर हो। ये तो हम भूल गए थे।' एक ने कहा, बाकी सब हँस पड़े। दूसरे ने एक लोकप्रिय फिल्मी संवाद की तर्ज पर कहा, 'खाना नहीं खाएगा, तो गोली खाएगा।' दहशत के मारे वह दी हुई चीजें खाने लगा।

इसके बाद का वर्णन करते हुए उसने लिखा था, 'उन्हे हँसते हुए देख कर मुझे इलहाम सा हुआ कि ये मुझको मार डालेंगे। मैंने सोचा कि बचने की एक ही उम्मीद है कि किसी भीड़भाड़वाली जगह पर मैं ट्रक से कूद जाऊँ। इसके दो नतीजे थे, एक मौत से बचाव था, दूसरा था मौत। मैंने सोचा मरना तो पड़ेगा मुझे, चाहे चलती ट्रक से कूद कर मरूँ या इनके हाथों मारा जाऊँ। ट्रक के विकल्प में इस उम्मीद की गुंजाइश भी थी कि मुमकिन है बच जाऊँ। चोट लगेगी, हाथ, पैर की हड्डियाँ टूटेंगी पर जीवन बचा रहेगा। मुझे यह कबूल था। उस क्षण में मैंने यह भी सोचा कि मैं पुनः अनशन स्थल पर पहुँचूँगा और कहूँगा कि मेरी टूटी हुई हड्डियाँ देखिए। ये मेरी हड्डियाँ नहीं टूटी हैं इस देश के लोकतंत्र को फ्रैक्चर हो गया है। मेरा अपाहिजपन दरअसल इस देश के शक्तिपीठों की क्रूरता और न्यायप्रणाली की विकलांगता को दर्शाता है।'

लेकिन ऐसा वक्तव्य देने का अवसर उसे नहीं मिला था। क्योंकि ट्रक बहुत तेज गति से चल कर एक सुनसान मैदान में रुका था। जब ट्रक तेज गति में था तो उसके लिखे कागज के अनुसार जो उनका मुखिया लग रहा था उसने कहा, 'पच्चासी की स्पीड में चल रहा है ट्रक। तुम्हें कुचलने में इसे क्या दिक्कत और मुरौव्वत होगी। तुम्हारा यह भरोसा भी टूटने से रह जायगा कि तुम्हारी मौत एक्सीडेंट से होगी। लेकिन हम तुम्हें मारेंगे नहीं। सिर्फ यह अहसास कराना चाहते हैं कि तुम यह जानो कि तुम हमेशा हमारी निगरानी में हो, हमारी दया और इन्सानियत के नाते जिंदा हो। हम जिस पल चाहें, तुम्हारा किस्सा खत्म।' इसके बाद ट्रक रोक कर उसे उस सुनसान मैदान में छोड़ दिया गया था और वे गोलियाँ दागते हुए चले गए थे। वह भयभीत, शर्मशार वहाँ खड़ा थर-थर काँप रहा था ठंड और खौफ से। उसने अंत में लिखा था : 'ठंड और खौफ के

अहसास के अलावा मुझे यह बात भी सता रही थी कि उनका दिया खाने के बाद मेरी भूख हड़ताल टूट चुकी थी। एक ओर मैं बेइज्जती से गड़ा जा रहा था कि खा लेने के बाद मेरे अपने लोग भी अब मुझे धोखेबाज, पेटू और भगोड़ा समझेंगे। दूसरी तरफ मुझे यह आशंका भी थी कि कहीं दोबारा न दबोच लिया जाऊँ। मैं घर नहीं लौटा और भागता रहा। मैंने अपना मोबाइल बंद रखा। इसलिए कि कहीं वे मुझे फोन करके कोई नया फरमान न सुना दें।' सुनिधि ने कागज को तहा कर बाबा के सिपुर्द किया और कार स्टार्ट की, 'इस वक्त वह कहाँ है?'

'घर पर।' बाबा ने बताया, 'इधर उधर भटकने के बाद वह मेरे पास प्रतापगढ़ आ गया था। कहता था, नौकरी चाकरी नहीं करेगा, वहीं रहेगा। मगर मैं उसे ले कर यहाँ आया। आख़िर इनसान को मुखालिफ हवा से लड़ना होता है। यूँ ही धनुष बाण नहीं रख देना चाहिए। जितनी मुझमें अक्ल है समझा चुका हूँ मगर वह घर से बाहर निकलने को तैयार नहीं हो रहा है। अब तुम ही समझाओ टीना बिटिया। हो सकता है, तेरी बात असर करे। उसने बार बार तुम्हारा नाम लिया और सुबह से ही तुमको बुलाने के लिए कह रहा था।'

सुनिधि बोली नहीं। वह उसी लय में कार चलाती रही। वह सोच रही थी, इस बार रतन की कहानी पर विश्वास नहीं किया जाएगा। उसके सारे वृत्तांत को प्रसिद्धि की प्यास, कपट की कहानी, बददिमाग का बयान सरीखे शब्दों से नवाजा जाएगा। उसकी बातें मनोविकार हों अथवा उनमें सौ प्रतिशत यथार्थ हो, इतना निश्चित था कि दोनों ही परिस्थितियों में वह तबाह हो रहा था। एक क्षण के लिए मान ही लिया जाए, यह सब उसके किसी काल्पनिक भय का सृजन है तो भी कहा जा सकता है कि वह उसके भीतर इतना फैल चुका था कि छुटकारा जल्दी संभव नहीं दिख रहा था। और यदि वाकई किसी सत्ता के निशाने पर था वह, तो पार पाना ज्यादा कठिन था।

स्थिति आशंकाओं से बहुत अधिक गूढ़, दुखद और किंकर्तव्यविमूढ़ कर देनेवाली थी। बाबा ने तीन बार जब अपनी पहचान बताई तब उसने दरवाजा खोला था। पहले उसने जरा सा खोल कर बाहर की थाह ली थी। उस समय उसका चेहरा देख कर सुनिधि दहल उठी थी। इतना थका हुआ, डरा हुआ और हारा हुआ चेहरा उसने पहले कभी नहीं देखा था। यह और भी त्रासद इसलिए कि वह चेहरा रतन का था।

अंदर पहुँच कर बाबा दूसरे कमरे में चले गए। जाते हुए उन्होंने कहा, 'टीना बिटिया, मैं दफ्तर और घर की दौड़ाभागी से थक गया हूँ। अब थोड़ी देर आराम करूँगा।' उनके

जाने के बाद रतन ने दरवाजे को परखा कि वह बंद है कि नहीं। बंद था। उसने भीतर से ताला लगा दिया।

वह आ कर बैठा और यह दिखलाने का भरसक जतन करने लगा कि वह सहज और निडर है। सुनिधि ने उससे पूछा, 'क्या हालचाल हैं?'

'बढ़िया और तुम्हारा?'

'मैं भी ठीक हूँ।'

सुनिधि ने उसे सहज दिखाने की असहज स्थिति से उबारने के लिए इधर उधर की बातें शुरू कर दीं। अपने दफ्तर पर चर्चा की। इंटरनेट और मोबाइल पर पढ़े कुछ लतीफे सुनाए और इधर देखी हुई एक रोमांटिक फिल्म पर अपनी मुख्तसर टिप्पणी प्रस्तुत की। वह गौर से सुन रहा था और उसके चेहरे पर उचित भावनाएँ भी उभर रही थीं, इससे सुनिधि को तसल्ली हुई। लेकिन वह इस बात से चौंक पड़ी थी और चिंतित हो गई थी कि वह अपनी भावनाएँ अजीब ढंग से छिपा लेना चाहता था। जब उसे हँसी आती थी तो वह अपनी हथेली से होठों को ढँक ले रहा था। अपनी आँखें हमेशा चारों ओर नचाता रहता था। जैसे हर कोने अंतरे से उसे खतरा था और वह लगातार नजर रख रहा था। उसके एक हाथ में कोई पत्रिका थी जिसे वह बोलते समय गोल करके मुँह के सामने कर लेता था। इससे आवाज गूँजती हुई सी और परिवर्तित हो उठती थी। सुनिधि को पक्का यकीन हो गया, वह किसी अदृश्य शत्रु से सावधानी बरतते हुए अपनी शिनाख्त को छिपाना चाह रहा है।

'यहाँ मेरे और बाबा के सिवा कोई नहीं है। दरवाजा बंद है और ताला जड़ा है, फिर तुम इतना डर किससे रहे हो?'

'तुम उनकी ताकत के बारे में नहीं जानती हो।' वह फुसफुसाया, 'वे कभी भी कहीं भी पहुँच सकते हैं। वे सब देख सकते हैं, सुन सकते हैं, कर सकते हैं। वे इनसान के दिमाग में चिप लगा देते हैं और उसके सारे भेद जानते रहते हैं।'

'तुम्हारे दिमाग में तो अभी चिप नहीं लगाया है न?'

'लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं है जो उनसे छिपा रहता है। मैंने तुम्हें 'अननोन कॉल' के बारे में बताया था न, इधर वह बहुत ज्यादा आने लगा था। मैं डर के मारे हमेशा मोबाइल बंद रखता हूँ। न जाने वे कब कौन सा निर्देश भेज दें...।' उसने पहलू बदला, 'मैं अखबार नहीं पढ़ता, टी.वी. भी नहीं देखता क्योंकि वे इनके जरिए भी मुझे संदेश दे

देंगे जिसे मजबूरन मुझको मानना पड़ेगा। मैंने घर से बाहर निकलना छोड़ दिया है और घर के दरवाजे बमुश्किल खोलता हूँ, अतः बचा हूँ और तुम्हारी आँखों के सामने हूँ। लेकिन इसका खामियाजा भी भुगत रहा हूँ। अखबार, टी.वी. से दूर हो जाने के कारण मैं बाहरी दुनिया से पूरी तरह कट गया हूँ। मुझे कुछ भी नहीं मालूम कि देश दुनिया में कहाँ क्या हो रहा है।' उसने सुनिधि से गुजारिश की, 'तुम्हीं बता दो इधर की खास खबरें।'

सुनिधि क्या बताए, वह पसोपेश में पड़ गई। सुंदर, सुखी दृश्य केवल विज्ञापनों में थे, अखबारों और टी.वी. के समाचार चैनलों के बाकी अंशों में हत्या, लूट, दमन, बलात्कार, षड्यंत्र और हिंसा व्याप्त थी। उसे लगा, रतन को ये सब बताने का अर्थ है उसकी आशंकाओं, दहशत और नाउम्मीदी की लपटों को ईंधन देना। यह बताना तो और भी मुसीबत की बात थी कि अनशन स्थल से गायब होने के बाद समाचार माध्यमों में उसकी कितनी नकारात्मक छवि पेश हुई थी। वह भगोड़ा, भुक्खड़, डरपोक और सनकी इनसान बताया जा चुका था।

लेकिन रतन के आग्रह को टालना भी संभव नहीं दिख रहा था। वह उसको देखते हुए उत्तर का इंतजार कर रहा था। जब से आई, पहली बार उसने रतन की पुतलियों को अपने चेहरे की तरफ स्थिर देखा था। अब उसे कुछ न बताने का अर्थ था उसकी पुतलियों को फिर से अविराम भटकाव के लिए बेमुरौव्वत छोड़ देना।

उसने झूठ बोलना शुरू किया : तुम यहाँ घर में बंद हो और बाहर आग लगी हुई है। ऐसा लगता है जैसे देश में बगावत हो गई है। तमाम लोग सरकार, धनिकों और धर्माधीशों के खिलाफ सड़कों पर उतर आए हैं। ऐसा माना जा रहा है कि 1942 के 'भारत छोड़ो' के बाद पहली बार इस देश में सत्ता के विरोध में ऐसा गुस्सा पनपा है...।'

'विश्वास नहीं हो रहा है...।'

'न करो, पर इससे सच्चाई नहीं बदल जाएगी। सच यह है कि देश की सारी सेज परियोजनाओं पर किसानों ने कब्जा कर लिया है और सेना ने उन पर गोली चलाने से इनकार कर दिया है।' सुनिधि को लगा कि पिछले दिनों घटे ट्यूनीशिया, मिस्र के जनविद्रोह उसकी कल्पना शक्ति को रसद-पानी दे रहे हैं, 'और छात्र, उनकी पूछो मत, बाप रे बाप! कोई भरोसा नहीं करेगा कि ये फास्ट फूड, बाइक, मस्ती और मनोरंजन के दीवाने लड़के हैं। वे अपने अपने शहरों, कस्बों और गाँवों में गुट बना कर धावा बोल रहे है।'

'अरे नहीं...' रतन कुमार खड़ा हो गया। वह खुशी और अविश्वास से हिल रहा था।

'न मानो तुम। पर इसका क्या करोगे कि औरतें भी कूद पड़ी हैं इस लड़ाई में। और बूढ़े भी।' उसे महसूस हुआ, वह कुछ ज्यादा ही गपोड़ी हो गई है लेकिन उसका मन लग गया था गप्प हाँकने में। उसने जारी रखा : 'अखबार, टी.वी. से दूर रहे इसीलिए नावाकिफ हो कि जिस रोज अनशन स्थल से गायब हुए, समाचार जान कर सत्तरह हजार लोग इकट्ठा हो गए थे। वे तुम्हारी जिंदाबाद के नारे लगा रहे थे और तुम्हें ढूँढ़ कर लाने की माँग कर रहे थे।' वह हँसी : 'जान कर अच्छा लगेगा, तुम्हारे कॉलम अप्रिय की जय हो के नारे भी गूँजे थे।'

'हे भगवान, कितने प्यारे और भले आदमी हैं धरती पर।' प्रसन्नता रतन कुमार की आवाज में छलकी, अचानक वह खुशी से चिल्लाया, 'सुनिधि, आज फिर मेरी आँखों में रोशनी आ गई है। मैं इस वक्त साफ साफ देख रहा हूँ।' वह भागा हुआ गया और बाबा को ले आया, 'बाबा, मुझे दिख रहा है। यह कुछ ही देर के लिए होगा लेकिन फिलहाल मैं देख पा रहा हूँ। तुम्हारे कुर्ते पर नीले रंग की बटनें लगी हैं और रंगमहल वस्त्रालयवाले कैलेंडर में सबसे बारीक हरफों में छपा है - सन 1928 में स्थापित। मैं बगैर आँखों के नजदीक लाए कोई किताब पढ़ कर सुना सकता हूँ तुमको।' वह एक किताब ला कर सामान्य दूरी से पढ़ने लगा।

बाबा भौचक्का हो कर उसे देख रहे थे। उन्हें इसी तरह हतप्रभ छोड़ कर वह उठा, 'सुनिधि, मैं तुम लोगों को चाय बना कर पिलाता हूँ।' वह किचन में जा कर आग पर बरतन चढ़ाने लगा। बाबा सोच रहे थे, 'रतन ड्रामा कर रहा है। उसने टीना से कुर्ते की छीटों का रंग, कैलेंडर की लिखावट को पहले से पता कर लिया होगा और किताब में जो लिखा है उसे मैं क्या जानूँ।'

सुनिधि चुप थी। उसके मन में चल रहा था : 'दीपावली की रात सात चिरागों के उजियाले में इसने मेरे शरीर के लक्षण देखे थे और खुश हुआ था। आज मेरे झूठे किस्सों ने इसके भीतर को जगमग किया।' उसके टखने काँपने लगे, वह बेहद बेचैन होने लगी। गहरे अफसोस और उदासी से उसने सोचा, 'काश, मेरे किस्से सच होते।'

https://www.hindiadda.com/shrrnkhala/